दीन की बातें
मौलाना
मुहम्मद अब्दुल हई (रह०)

दीन की बातें

دین کی باتیں

मुहम्मद अब्दुल हई

मकतबा अलहसनात (देहली)

मकतबा अल हसनात देहली प्रकाशन नं. 6

ISBN 81-85729-33-6

संस्करण 2014

प्रकाशकः

ए॰एम॰ फ़हीम

मकतबा अल हसनात

3004/2 Sir Syed Ahmad Road, Darya Ganj, New Delhi-110002
Tel. : 91-11-2327 1845, Telefax : 91-11-4156 3256
E-mail: alhasanatbooks@rediffmail.com

Printed at:

H.S. Offset Printers
Darya Ganj New Delhi-2

परिचय

मेरी एक किताब "दीन की बातें" बहुत दिनों से उर्दू में छपती रही है। यह किताब मैंने ऐसे लोगों के लिए लिखी थी जो कठिन भाषा नहीं समझ सकते और आसान ज़बान में उनके लिए दीनी किताबों की ज़रूरत है। इस किताब में मैंने यह कोशिश की है कि आम आदमी को यह मालूम हो जाए कि इस्लाम के बुनियादी अक़ीदे क्या हैं और वे ज़रूरी काम क्या हैं जो एक मुसलमान को करने ही चाहिएं। मैंने यह कोशिश भी की है कि हमारी ज़िन्दगी के सारे ही मामलात में इस्लाम हमें जिस रास्ते पर चलाना चाहता है वह मैं लोगों के सामने रख सकूं।

अल्लाह का बड़ा एहसान है कि उसने मेरी इस किताब को लोगों के लिए बहुत मुफ़ीद बनाया। अब तक इसके दस बारह संस्करण छप चुके हैं और कई दूसरी भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है मैं चाहता था कि यह किताब हिन्दी जानने वाले लोगों के सामने भी आ जाए। यह अल्लाह की मेहरबानी है कि अब मैं इसको हिन्दी रूप देने में सफल हुआ। आशा है कि यह हिन्दी जानने वाले सब लोगों के लिए बहुत लाभ की चीज़ साबित होगी जो इस्लाम को समझना चाहते हैं।

१६ मई १९६९।

मुहम्मद अब्दुल हई

दिन की बातें

दीन की बातें

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहम करने वाला है।

इस्लाम

यह दुनिया आप-से-आप नहीं बन गई है। इसका एक बनाने वाला है। वही अल्लाह है। वह अकेला है। उसने सब कुछ पैदा किया है।

यह रौशन और गर्म सूरज, यह चमकता हुआ चाँद, ये झिलमिलाते हुए तारे, ठंडी, गर्म और तेज़ हवाएं आसमान में तैरते हुये बादल, बादलों में बिजली की कौंद और चमक, ज़मीन को ज़िन्दा करने वाली बारिश, ज़मीन से उगने वाले फल फूल, पेड़, पौधे अनाज और तरकारियाँ, हवाओं में उड़ती हुई चिड़ियाँ ऊँचे ऊँचे पहाड़, गहरे समुद्र, बहते दरिया मतलब यह कि यहाँ जो कुछ है उसी अल्लाह का पैदा किया हुआ है वही सबका मालिक है। वही सब की देख-भाल करता है। जो कुछ होता है, उसी के हुक्म से होता है।

हर चीज़ उसके हुक्म पर चलती है। उसने सूरज के निकलने और डूबने का क़ायदा और वक्त मुक़र्रर कर दिया है। सूरज उसी क़ायदे पर चलता और उसी वक्त पर निकलता

और डूबता है।

अल्लाह ने हवाओं के चलने के लिये क़ायदा बना दिया है। हवाएं उसी क़ायदे के मुताबिक़ चलेंगी। पानी बरसने का भी एक क़ानून है। किसी की मजाल नहीं, जो उस क़ानून को तोड़ सके। इसी तरह दुनिया की सारी चीजों के लिये एक क़ानून है। इसी क़ानून के मुताबिक वे पैदा होती हैं, बढ़ती और ज़िन्दा रहती हैं। ऐसा मालूम होता है कि जिस पैदा करने वाले ने उन्हें पैदा किया है, उसके क़ानून से हटना उन के बस में ही नहीं। दुनिया में जो कुछ है एक ही पैदा करने वाले (अल्लाह) के बनाए हुए क़ानून पर चल रहा है।

इस्लाम का मतलब

"इस्लाम" अरबी भाषा का शब्द है इसका मतलब है "ताबेदारी"। ताबेदारी करनेवाले को "मुस्लिम" कहते हैं। इस मतलब को सामने रखकर देखो तो दुनिया की हर चीज़ "मुस्लिम" ही है क्योंकि हर चीज़ अपने पैदा करने वाले के हुक्मों पर चल रही है और पूरी ताबेदार है।

इन्सान भी इसी दुनिया में है। उसको भी अल्लाह ही ने पैदा किया है। इन्सान के पैदा होने, ज़िन्दा रहने और मरने का भी एक क़ानून है। इन्सान इसी क़ानून के मुताबिक़ पैदा होता है, साँस लेता है, खाता पीता और चलता फिरता है। इन सारी बातों में दूसरी चीज़ों की तरह वह भी अल्लाह के क़ानून में

बंधा है। इन्सान की भी यह मजाल नहीं कि अल्लाह ने आँख से देखने के लिये जो क़ानून बनाया है, वह उसको तोड़ कर देखने का काम कान या नाक से ले सके या सोचने का काम नाक से ले सके। या साँस लिये बिना ज़िन्दा रह सके। इस तरह इन्सान भी अपनी ज़िन्दगी के बहुत बड़े हिस्से में अल्लाह के क़ानून से जकड़ा है। इन बातों में वह भी दुनिया की दूसरी चीज़ों की तरह मुस्लिम है।

लेकिन इन्सान दुनिया की दूसरी चीज़ों की तरह बिल्कुल ही मजबूर नहीं है। इन्सान को अल्लाह ने समझ दी है। सोचने समझने की ताक़त दी है। उसे यह अख़्तियार दिया है कि वह चाहे तो किसी बात को माने और चाहे तो न माने। वह अच्छाई को भी अपना सकता है और बुराई को भी। वह सच्चाई के रास्ते पर भी चल सकता है और झूठे रास्ते पर भी। समझ से ठीक ठीक काम लेकर अपने मालिक को पहचान भी सकता है लेकिन अगर वह समझ से काम न ले बल्कि जिस तरह उसका मन चाहे, उस तरह चले तो अपने मालिक का इन्कार भी कर सकता है। वह चाहे तो उस मालिक के हक़ पहचाने और उन्हें अदा करे और अगर न चाहे तो कोई उसे मजबूर नहीं कर सकता।

इन्सान को अल्लाह तआला ने जो समझ दी है उससे वह सच्ची बातें नहीं जान सकता। बहुत सी बातें ऐसी हैं जो उसकी समझ से बाहर हैं। इन्सान अपनी समझ ही के बल पर उनका पता नहीं चला सकता, जबकि उन बातों का जानना उसके लिए बहुत ज़रूरी है, जैसे यही बात कि इन्सान मरने के बाद कहाँ

जाता है ? क्या वह सदा के लिये मर ही जाता है ? या उसे फिर ज़िन्दा होना है ? या यह बात कि इस दुनिया का मालिक इन्सान के किन कामों से खुश होता है और कौन से काम उसे पसन्द नहीं हैं। ये और इसी तरह की सैकड़ों बातें ऐसी हैं, जिनका जानना बहुत ज़रूरी है लेकिन इन्सान किसी तरह भी यह नहीं जान सकता और न उसके पास कोई ऐसी चीज़ है जिससे उसका पता चला सके।

अल्लाह तआला बड़ा मेहरबान है। उसने जो कुछ पैदा किया है, उससे उसको प्यार और मुहब्बत है। यह उसका प्यार ही तो है कि उसने हर एक जानदार की ज़िन्दगी का इतना अच्छा इन्तिज़ाम किया है। अगर उसकी मेहरबानी न हो तो कोई जानदार ज़रा देर भी तो ज़िन्दा नहीं रह सकता। इन्सान पर तो उसकी मेहरबानी सबसे ज्यादा है। सोचने से मालूम होता है कि दुनिया की हर चीज़ इन्सान की सेवा में लगी हुई है। सूरज चमकता है, उसकी गर्मी और रोशनी से अनाज, फल, तरकारियाँ उगती हैं। उसी की गर्मी से समुन्दर का पानी भाप बन जाता है इस भाप से बने हुये बादलों को हवाएं खुशकी की तरफ़ लाती हैं पानी बरसता है। खेतियाँ उगती हैं। सारे जानदारों की ज़िन्दगी का सामान होता है। हवा को देखो ज़िन्दगी के लिये खाना पानी से भी ज्यादा ज़रूरी है एक मिनट न मिले तो आदमी मर जाये पानी को देखो, ज़िन्दगी का कितना बड़ा सहारा है किन किन चीजों का नाम लिया जाये, अनगिनत नेमते हैं जिनकी बदौलत हमारी ज़िन्दगी है।

अब ज़रा सोचिये अगर ज़िन्दगी हो लेकिन वह बुरे कामों में लगी हो। समझ हो पर सीधा रास्ता न मिलने के कारण वह इन्सान को तबाही की तरफ ले जाये। इन्सान को यह मालूम ही न हो कि उसकी ज़िन्दगी किस काम के लिए है। वह ठीक ठीक यह जान ही न सके कि उसे क्या करना चाहिये ? और क्या न करना चाहिये तो यह इन्सान के लिये कैसी बड़ी बदनसीबी है। अल्लाह तआला जो सारे मेहरबानों से ज़्यादा मेहरबान है और जिससे बढ़कर कोई दूसरा मेहरबान हो ही नहीं सकता, वह इन्सान को इस बदनसीबी में फंसने के लिये कैसे छोड़ सकता था। यह बात उसकी मेहरबानी से दूर थी। उसकी मुहब्बत इस तरह देख नहीं सकती थी।

सबसे पहला इन्सान मुसलमान था

अल्लाह तआला की यह मुहब्बत ही तो थी कि जब उसने इन्सान को पैदा किया तो यह भी बता दिया कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है ? ज़िन्दगी दी तो ज़िन्दगी बिताने का ढंग भी बताया, समझ दी तो उसको ठीक काम में लाने का तरीक़ा भी समझाया आपने सुना होगा कि सबसे पहले इन्सान हज़रत आदम अलैहिस्सलाम हैं अल्लाह ने सारे इन्सानों से पहले हज़रत आदम अलैहिस्सलाम को पैदा किया हज़रत आदम अलैहिस्सलाम अल्लाह के नबी भी थे अल्लाह तआला ने उनको बता भी दिया था कि वह उसके दिये हुये अख़्तियार को

किस तरह काम में लाये। कौन से काम करे किन कामों से बचे। अल्लाह की दी हुई समझ से किस तरह काम ले। अल्लाह ने हज़रत आदम अलैहिस्सलाम को वे बातें भी बता दी थीं जिनको इन्सान अपनी समझ से जान नहीं सकता उन्हें मालूम था कि इन्सान की ज़िन्दगी यही इस दुनिया की ज़िन्दगी नहीं है बल्कि इसके बाद फिर जीना है वह यह भी जानते थे कि अच्छे काम क्या हैं और बुरे क्या हैं ? उन्हें यह भी मालूम था कि अच्छे कामों का बदला क्या है ? और बुरे कामों की सज़ा क्या है वह यह भी खूब जानते थे कि इन्सान किस तरह अल्लाह का पूरा पूरा ताबेदार बन सकता है ? अल्लाह की खुशी और नाखुशी को वह अच्छी तरह पहचानते थे। वह अल्लाह के 'मुस्लिम' थे और इस्लाम ही उनका दीन और धर्म था।

हज़रत आदम अलैहिस्सलाम ने यही इस्लाम अपने बच्चों को सिखाया और इसी इस्लाम की राह पर उन्हें चलाया। हज़रत आदम अलैहिस्सलाम की औलाद ने यही दीन अपने बच्चों को सिखाया पर जैसे-जैसे दिन बीतते गये लोग उनकी बताई हुई बातें भूलते गये और फिर उन की भूली हुई बातों के बदले कुछ नई बातें गढ़ लीं और इन गढ़ी हुई बातों को दीन व धर्म ही की बातें समझने लगे।

अल्लाह का दीन सदा एक रहा

अल्लाह तआला अपने बन्दों पर बहुत मेहरबान है। उसने अपनी मेहरबानी से फिर यह किया कि इन्सानों को दीन की

भूली हुई बातें याद दिलाईं। अल्लाह् ने अपने किसी और बन्दे को अपना रसूल बनाकर भेजा। अब धीरे-धीरे हज़रत आदम की औलाद दुनिया के बहुत-से हिस्सों में फैल गई थी और बहुत-सी क़ौमें, जातियाँ और खानदान बन चुके थे, इसलिये अल्लाह् तआला ने हर क़ौम और हर मुल्क में अपने रसूल भेजे। अल्लाह् के ये रसूल अरब, ईरान, शाम, हिन्दुस्तान, चीन सारे ही देशों में आये। जहाँ-जहाँ इन्सान बसते थे, वहीं अल्लाह् ने अपने रसूल पैदा किये। इन सारे रसूलों ने अल्लाह् का दीन अल्लाह् के बन्दों तक पहुँचाया। इन सारे रसूलों का दीन इस्लाम ही था। अल्लाह् के सारे ही रसूल अल्लाह् के बन्दों को अल्लाह् तआला की ताबेदारी और उसी की इबादत (बन्दगी) का हुक्म देते थे। आख़िरत की ज़िन्दगी याद दिलाते थे और इन्सानों को अल्लाह् की खुशी के मुताबिक़ जीना और मरना सिखाते थे। इन सारे रसूलों के मानने वाले और इनके बताये हुये सच्चे रास्ते पर चलने वाले लोग मुसलमान ही थे। हज़रत नूह् अलैहिस्सलाम, हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम, हज़रत हूद अलैहिस्सलाम, हज़रत सालेह् अलैहिस्सलाम, हज़रत इसमाईल अलैहिस्सलाम, हज़रत इसहाक़ अलैहिस्सलाम, हज़रत यूसुफ अलैहिस्सलाम, हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम अल्लाह् के मशहूर रसूलों में से हैं। इनका हाल अल्लाह् ने क़ुरआन पाक में बयान फ़रमाया है। इनके अलावा और बहुत से रसूल भी आये। इन सब का बयान क़ुरआन पाक में नहीं है मगर मुसलमान इन सब रसूलों को सच्चा मानते हैं। इनके लाये हुये दीन को अल्लाह् का दीन और उनकी पैरवी करने वालों को मुसलमान कहते हैं,

सलाम हो अल्लाह के इन सारे रसूलों पर और अल्लाह की रहमत हो इन रसूलों की सच्ची पैरवी करने वालों पर। सब से आख़िर में तमाम रसूलों के सरदार अल्लाह के सबसे प्यारे बन्दे, बड़ाई में सारे इन्सानों से बढ़कर अल्लाह के आख़िरी रसूल हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि-वसल्लम को अल्लाह ने पैदा फ़रमाया। उस वक्त दुनिया बहुत तरक्क़ी कर चुकी थी। अब यह मौक़ा आ गया था कि सारी दुनिया के इन्सानों को एक ऐसा क़ानून दे दिया जाये जिस पर चलकर वे अच्छी और सफल कामियाब ज़िन्दगी गुज़ार सकें। अल्लाह ने अपना दीन पूरे-का-पूरा हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम के ज़रिये अपने बन्दों तक पहुँचा दिया। यह पूरा दीन अल्लाह की किताब क़ुर-आन और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम की बताई हुई बातों और आपकी ज़िन्दगी के हालात जीवन चरित्र में आज दुनिया में मौजूद है। यह दीन वही इस्लाम है जो पहले से है और जिसे अल्लाह के हर नबी ने अल्लाह के बन्दों तक पहुँचाया है।

क्या सारे धर्म सच्चे हैं ?

अल्लाह का भेजा हुआ दीन हमेशा से एक ही रहा है और वह दीन इस्लाम ही है। इस सच्ची और सीधी बात को बहुत से कम समझ या चालाक लोगों ने बहुत घुमा-फेर कर बिगाड़ दिया है। आप जानते हैं कि आज दुनिया में सैकड़ों

धर्म वाले हैं और हर एक धर्म वाला अपने धर्म को सच्चा और ख़ुदा की तरफ़ से आया हुआ कहता है। हर एक दूसरों के धर्म को ग़लत और अपने धर्म को ठीक बताता है और इस तरह लड़ाई-झगड़ा होने लगता है अब यह लड़ाई कैसे ख़तम हो? इसकी एक शकल तो यह है कि सारे इन्सान मिलकर किसी एक धर्म को अपना लें और सब एक ही रास्ते पर हो जायें, लड़ाई आप-से-आप ख़तम हो जायेगी, लेकिन यह शकल हो ही नहीं सकती। ऐसा न कभी हुआ है और न हो सकता है। लोगों के सोचने का ढंग अलग-अलग होता है। अलग-अलग बातें लोगों को पसन्द हैं, उनके मिज़ाज अलग-अलग हैं ऐसा नहीं हो सकता कि सब लोग एक ही बात को पसन्द करने लगें। कोई बात चाहे जैसी सच्ची ही क्यों न हो फिर भी नहीं हो सकता ऐसी कोशिश कभी कामयाब नहीं हो सकती। जिन लोगों ने ऐसा करना चाहा उन्होंने दुनिया में ख़ून-ख़राबे तो बहुत कर डाले पर बात न बनी।

अब क्या हो? झगड़ा कैसे दूर हो? धर्म वालों की आपस की लड़ाई कैसे ख़तम हो? इसके लिये कुछ लोगों ने यह शोर मचाना शुरू कर दिया कि सारे ही धर्म सच्चे हैं, जो जिस धर्म को चाहे, अपना ले, वह कामयाब हो जायेगा इन लोगों ने कहा कि ये सारे धर्म ख़ुदा तक पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं। जो जिस रास्ते से चाहे ख़ुदा तक चला जाये। किसी ने कहा कि ख़ुदा तो एक है और सारे इन्सान चारों ओर से उसे घेरे हैं अब जो ख़ुदा को जिधर से देखे और उसकी तरफ मुँह करके खड़ा हो जाये और उसकी तरफ चल पड़े ख़ुदा को पा लेगा। इस तरह की बातें

आजकल कही जा रही हैं।

सारे धर्म सच्चे नहीं हो सकते

हो सकता है कि दूसरे धर्म वालों के बारे में यह बात ठीक हो लेकिन इस्लाम के बारे में ठीक नहीं हो सकती इस्लामी शिक्षा में यह बात नहीं मिलती कि आदमी इस तरह की ग़लत बात मुंह से निकाले या उसे सच माने। बात बिल्कुल साफ है, ज़रा ध्यान दीजिये इस्लाम में यह बात नहीं है जो कुछ दूसरे धर्मों में है। इस्लाम यह नहीं बताता कि इन्सान ख़ुदा में मिल जाता है। इस्लाम कहता है कि इन्सान इन्सान है और ख़ुदा ख़ुदा है। इस्लाम ख़ुदा को पा लेने का मतलब यह बताता है कि इन्सान ख़ुदा की मरज़ी को पा ले। इस्लाम इन्सान की कामयाबी इसमें बताता है कि इन्सान ख़ुदा को राज़ी कर ले, अपने मालिक को ख़ुश कर ले, ऐसे काम करे, जो उसका मालिक चाहे और ऐसे कामों से बचे जो ख़ुदा न चाहे। इन्सान ख़ुदा के हुक्मों पर चले। इस्लाम का मतलब है ख़ुदा की ताबे-दारी पूरी ताबेदारी।

अब ज़रा सोचिये, यह कैसे हो सकता है कि एक को ख़ुश करने के लिये वे सारी बातें ठीक मान ली जायें जो एक दूसरे की उलटी हों जैसे कोई कहे कि ख़ुदा को एक माना जाये, किसी को उसका साझी न बनाया जाये दूसरा कहे नहीं वह अकेला नहीं बल्कि ख़ुदा दो हैं। तीसरा कहे नहीं ख़ुदा दो नहीं बल्कि

तीन हैं। चौथा आदमी कहे कि नहीं, सैकड़ों ख़ुदा हैं जो मिल-जुल कर दुनिया का काम चला रहे हैं। पाँचवा कहे कि भई ख़ुदा तो है ही नहीं। यह तो ढकोसला है इसी तरह कोई यह माने कि वह इन्सान ख़ुदा था। दूसरा माने कि वह इन्सान ख़ुदा तो नहीं पर ख़ुदा का अवतार था। तीसरा यह माने कि नहीं ये सब गलत, इन्सान कभी ख़ुदा नहीं हो सकता। इन्सान तो बन्दा है दास है और ख़ुदा पूज्य है, स्वामी है, मालिक है अब सोचिये, यह बात कितनी गलत है कि इस तरह की अलग-अलग सारी बातों को सच मान लिया जाये। यह तो ऐसी ही गलत बात होगी जैसे कोई कहे दो और दो पाँच होते है कोई कहे कि दो और दो ६, कोई सात कहे और कोई इन सारें जवाबों को ठीक कहने लगे। समझदारी की बात वही होगी जो कहे कि दो और दो चार होते हैं और यही एक बात ठीक भी है अब हमारा काम यह है कि इन सारी बातों में से वह सच्ची बात खोज निकालें।

अब आप यह सोचेंगे कि फिर क्या हो ? क्या सारे धर्मों वाले योंही लड़ते रहेंगे ? और एक दूसरे के रास्ते को गलत कह कह कर आपस में बैर बढ़ाते रहेंगे ? झगड़ा करते रहेंगे ? नहीं, इस्लाम इस ख़राबी को दूर करने के लिये दूसरा तरीक़ा बताता है। वह अपने मानने वालों को यह शिक्षा देता है। क़ुर-आन में है :—

"ये लोग अल्लाह को छोड़कर जिन दूसरों को जिन्हें वे पूजा के लायक़ समझते हैं पुकारते हैं तुम उनको बुरा न कहो क्योंकि उसके जवाब में अनजाने वे अल्लाह को गालियाँ देंगे। हमने इस तरह हर कौम के लिये उसके अपने क़ामों को उसकी पसन्द का

बना दिया है फिर इन सबको अपने रब स्वामी, मालिक की ओर वापिस जाना है वहाँ उनका रब उन्हें बता देगा कि उन्होंने कैसे काम किये थे।" (सूरः अनआम रुकू—१३)

दूसरे धर्म वालों और उनके पूज्यों को बुरा कहना मुसलमान का काम नहीं। उसे तो अपने अल्लाह के हुक्मों पर ध्यान रखना चाहिये। वह हर बुराई का बदला देने के लिये काफ़ी है यहाँ जो जैसे काम करेगा आख़िरत में वैसा भरेगा। मुसलमान का काम तो बस इतना है कि वह उन लोगों को जो अल्लाह को छोड़कर दूसरों को ख़ुदा बनाते हैं प्यार व प्रेम के साथ ठीक और सीधा रास्ता बताये। अल्लाह की ख़ुशी और नाख़ुशी का मतलब समझाये और आख़िरत में कामयाब होने के लिये उन्हें अल्लाह की मरज़ी का रास्ता अपनाने को कहे लेकिन अगर उसकी बातें कोई न सुने या उन्हें न माने तो उसे बुरा कहने या लड़ाई करने का कोई हक़ नहीं मुसलमान का काम हरगिज़ यह नहीं है कि वह जबरदस्ती अपना मज़हब किसी पर लादे लड़ने की इजाज़त इस्लाम उस वक्त देता है जब कुफ़्र करने वाले अपनी ताकत से इस्लाम का रास्ता रोकने लगे और मुसलमानों को इस्लाम पर चलने और इस्लाम फैलाने से रोकें। जब तक यह न हो, इस्लाम लड़ने का हुक्म नहीं देता। क़ुरआन में है :—

"ऐ मुहम्मद! उनसे कह दो कि ऐ इन्कार करने वालो! न मैं उन्हें पूजता हूं जिनको तुम पूजते हो और न तुम उसके पूजने वाले हो जिस को मैं पूजता हूं और आगे चलकर भी मैं उन्हें पूजने वाला नहीं जिनको तुम पूजते हो और न तुम उसको

पूजने वाले हो जिसको मैं पूजता हूं। तुम्हारे लिये तुम्हारा दीन है और मेरे लिये मेरा दीन है।" (सूर: काफ़िरुन)

क़ुरआन मजीद में जगह-जगह इस तरह की शिक्षा पाई जाती है। क़ुरआन में तो यहाँ तक फ़रमाया गया है कि इस्लामी हुकूमत में भी किसी को ज़बरदस्ती मुसलमान नहीं बनाया जा सकता बल्कि इस्लामी हुकूमत में ग़ैर मुस्लिमों को पूरी आज़ादी है कि जिस धर्म को चाहे उसे अपनाये। इस्लामी हुकूमत ग़ैर मुस्लिमों की पूरी-पूरी रक्षा करेगी और उनके सारे हकूक़ की हिफ़ाज़त करेगी।

ध्यान दीजिये, ठीक-ठीक तरह से अम्न क़ायम रखने के लिये और लोगों के दिलों में एक दूसरे के लिये जगह पैदा करने के लिये ऐसी ही शिक्षा की जरूरत है। इस शिक्षा के मुताबिक़ जो आदमी जितना ज़्यादा मज़हब को मानने वाला होगा, उतना ही ज़्यादा अल्लाह के हुक्मों का ख़्याल रखेगा और अपनी तरफ़ से किसी झगड़े का मौक़ा न देगा।

सच्चा दीन इस्लाम ही है

ठीक बात यही है कि इस्लाम बहुत से धर्मों में से कोई एक धर्म नहीं है बल्कि वही सबसे ज़्यादा पुराना और सत्य धर्म है। बाक़ी धर्म उसकी बिगड़ी हुई शक्लें हैं सच्चा मज़हब एक ही हो सकता है और एक ही है भी और यह है इस्लाम। इस्लाम अल्लाह का दीन है। अल्लाह का बनाया हुआ सीधा रास्ता है हर

ज़माने में यही दीन सच्चा रहा है। बस इतनी बात सच है कि आज जो धर्म पाये जाते हैं, उन के मानने वालों ने उसी सच्चे दीन में काट छांट करके अपना मनमाना धर्म बना लिया है और इस तरह सच्चे दीन और सीधे रास्ते को खो बैठे पर इस्लाम आज भी वैसे का वैसा ही है जैसा अल्लाह की तरफ़ से आया था। अल्लाह की भेजी हुई किताब क़ुरआन में किसी अक्षर और मात्रा का भी बल न पड़ने पाया। फिर यह कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि-वसल्लम के हालात और आपकी शिक्षा भी ठीक ठीक मिलती है। आज अगर कोई इस्लाम को समझना चाहे तो उसे पूरी तरह समझ सकता है। वह जान सकता है कि अल्लाह ने क्या हुक्म दिये और नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने उन हुक्मों पर अमल करके क्या नमूना दिया? अल्लाह तआला ने क़ुरआन ही में फ़रमाया है कि उसका दीन (इस्लाम क़ियामत तक ठीक ठीक बाक़ी रहेगा) सूरः हुजरात की नवी आयत है :—

إِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَإِنَّا لَهُ لَحَافِظُونَ

(الحجر، آیت ۹)

"बेशक इस नसीहत यानी क़ुरआन को हमने ही उतारा है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"

ईमान

आप यह जान चुके कि अल्लाह तआला की पूरी पूरी ताबेदारी का नाम 'इस्लाम' है। लेकिन यह ताबेदारी कोई आसान काम नहीं है ख़ुदा के हुक्मों के मुकाबिले में दूसरे इन्सानों और ख़ुद अपने दिल की चाहों और अरमानों को ठुकरा देना और हर काम में एक अल्लाह के हुक्मों पर चलना बड़ा कठिन काम है इसलिये इस्लाम की राह पर वही लोग चल सकते हैं जो इस्लाम की कुछ असल बातों को जानते हों और वे उन बातों के सच होने पर पूरा पूरा यक़ीन रखते हों। इसी यक़ीन का नाम "ईमान" है। ईमान के बिना इस्लाम के हुक्मों पर चला नहीं जा सकता और अगर किसी पर चला भी जा सके तो उसका वह असर भी नहीं हो सकता, जो होना चाहिये। ईमान का मतलब ही यह है कि दिल में पूरा-पूरा यक़ीन बैठ जाना और इस यक़ीन के ख़िलाफ़ किसी और बात को कभी भी न मानना।

जिन बातों पर ईमान लाये बिना कोई आदमी मुसलमान नहीं हो सकता, वे ये हैं :—

(१) अल्लाह पर ईमान
(२) रसूल पर ईमान
(३) आख़िरत पर ईमान

(४) अल्लाह की तमाम किताबों, तमाम रसूलों, फ़रिश्तों और अल्लाह की बनाई हुई तक़दीर पर ईमान।

अल्लाह पर ईमान

ऐसे सिर फिरे जो यह कहें कि 'इस दुनिया का पैदा करने वाला और मालिक कोई नहीं है, बहुत ही थोड़े हैं ज्यादातर लोग खुदा के माननेवाले ही हैं लेकिन मुसलमान होने के लिये खुदा को जिस तरह मानना चाहिये, वह कुछ और है। बस इतना ही मान लेना काफ़ी नहीं कि 'ख़ुदा है।' अल्लाह पर ईमान लाने के बारे में मुसलमान का अक़ीदा यह होता हैं :—

(१) अल्लाह एक है, उस जैसा कोई नहीं। जो गुण और खूबियाँ उसमें हैं वे ख़ूबियाँ किसी दूसरे में नहीं हो सकतीं और न कोई क़भी ऐसा हुआ और न ही होगा ? क़ुरआन में साफ़-साफ़ है कि।

لَيْسَ كَمِثْلِهٖ شَيْءٌ۔

(سورۂ شوریٰ آیت ۱۱)

"संसार की कोई चीज़ उस जैसी नहीं।" (सूरः शूरा आयत ११)।

(२) उसके न कोई बेटा है और न वह किसी का बेटा है।

لَمْ يَلِدْ وَلَمْ يُوْلَدْ

(سورۂ اخلاص)

"न उसने किसी को जना और न वह जना गया (सूरः इख़लास)।"

(३) वह सब कुछ देखनेवाला और सुननेवाला है। कोई ऐसी चीज़ नहीं, जिसे वह न जानता हो। यों तो हम आप और सारे इन्सान देखते भी हैं और सुनते भी लेकिन हमारे देखने के लिये ज़रूरी है कि रोशनी हो, हमारी आँखें ठीक हों, चीज़ इतनी दूर न हो कि हम देख न सकें। इसी तरह हमारे सुनने के लिये भी कुछ शर्तों की ज़रूरत है लेकिन अल्लाह तआला को देखने के लिये किसी शर्त की ज़रूरत नहीं। अल्लाह के सिवा कोई ऐसा नहीं, जो शर्तों के बिना कुछ देख या सुन सके। चाहे वह कोई ज़िन्दा इन्सान हो, चाहे मुर्दा बुज़ुर्ग या कोई देवता या देवी ही हो। क़ुरआन में है कि।

إِنَّ اللّٰهَ هُوَ السَّمِيْعُ الْبَصِيْرُ (سورہ مومن آیت ۲۰)

"बेशक अल्लाह ही सुनने और देखने वाला है। (सूरः मोमिन आयत २०)।

(४) अल्लाह तआला हर ढकी और छुपी चीज़ को जानता है। ग़ैब[1] का ज्ञान उसीको है। अल्लाह के सिवा ग़ैब की बातें न कोई जानता है और न जान सकता है। हाँ, अगर वही चाहे तो किसी को कोई बात बतादे। उसके बताये बिना किसी में यह ताक़त नहीं कि वह ग़ैब की कोई बात भी जान सके, चाहे

---

[1]ग़ैब उन ढकी छुपी चीज़ों और बातों को कहते हैं जिनको अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता हो अल्लाह ने ग़ैब की कुछ बातों का ज्ञान अपने नबियों को दिया। नबियों ने वे बातें सबको बता दीं फिर एलान कर दिया कि इनके सिवा हम भी कुछ नहीं जानते। उनमें से कुछ बातें ये हैं जैसे जन्नत, जहन्नम, जिन्न, फ़रिश्ते आदि।

वह कोई जिन्न हो या फ़रिश्ता या वह अल्लाह का कोई बड़े से बड़ा वली या नबी ही हो।

قُلْ لَّا يَعْلَمُ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ الْغَيْبَ اِلَّا اللّٰهُ (سورۂ نمل۔ آیت ۶۵)

"कह दो कि अल्लाह के सिवा आसमानों और ज़मीन में जो कोई भी है (इन्सान ज़िन्दा या मुर्दा, जिन्न या फ़रिश्ता) उसे ग़ैब का ज्ञान नहीं। (सूर: नमल आयत ६५)।

(५) नफ़ा और नुक़सान (लाभ और घाटा) बिल्कुल अल्लाह ही के बस में है उसके सिवा न कोई किसी को नफ़ा पहुंचा सकता है और न नुकसान। अरब के मुश्रिक[१] अल्लाह के सिवा देवी देवताओं, जिन्नों, फ़िरश्तों और बुतों से फ़ायदे की उम्मीद लगाते थे और उनसे डरते थे कि कहीं वे नुक़सान न पहुँचा दें। और यह बात वहीं के मुश्रिकों में ही न थी बल्कि सारी दुनिया के मुश्रिकों में थी और आज भी है। अल्लाह तआला फ़रमाता है कि—

وَلَا يَمْلِكُوْنَ لِاَنْفُسِهِمْ ضَرًّا وَّلَا نَفْعًا (الفرقان آیت)

"इनके बस में नहीं कि वे अपने आपको किसी नुक़सान से बचा लें या कोई नफ़ा पहुँचा लें तो भला वे किसी और को क्या नफ़ा या नुक़सान पहुँचायेंगे।

[१] मुश्रिक उसे कहते हैं जो यह मानता हो कि जो खूबियां और गुण अल्लाह में हैं वे किसी और में भी है। जैसे यह मानना कि कोई देवी देवता या पीर फ़क़ीर या साधू किसी के दिल की बात जानता है या बताये कि कल यह होगा या तनिक देर के बाद ऐसा हो जायेगा आदि।

(६) अल्लाह ही हमारी ज़रूरतें पूरी करता है और वही पूरी कर सकता है। वही हमारी दुआयें सुनता है। उसके सिवा किसी में यह ताक़त नहीं कि वह हमारी पुकार सुन सके या हमारी मदद कर सके। अरब के मुश्रिक अल्लाह के सिवा जिन महापुरुषों और देवी-देवताओं को पुकारते थे और आज भी जो लोग इसी तरह का अक़ीदा और विश्वास रखते हैं, उनके बारे में अल्लाह फ़रमाता है—

"अगर तुम उन (मुर्दा महा-पुरुषों, देवी-देवताओं और मूर्तियों) को पुकारो तो वे तुम्हारी पुकार न सुनेंगे और अगर वे (ज़िन्दा हों और) सुन भी लें तो तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकते।" (सूरः फ़ातिर —आयत १४)

إِنْ تَدْعُوهُمْ لَا يَسْمَعُوا دُعَاءَكُمْ وَلَوْ سَمِعُوا مَا اسْتَجَابُوا لَكُمْ (سورۂ فاطر آیت ۱۴)

(७) भरोसा सिर्फ़ अल्लाह तआला पर ही किया जा सकता है। अल्लाह के सिवा किसी दूसरे पर भरोसा करना या उससे उम्मीद लगाना ठीक नहीं। इसी तरह—अल्लाह के सिवा किसी ऐसे को मदद के लिए पुकारना, जो वहाँ मौजूद नहीं है या यह यक़ीन रखना कि इस तरह पुकारने से अल्लाह के सिवा दूसरा कोई न मौजूद होने पर भी सुन लेगा और हमारी ज़रूरत पूरी कर देगा, खुला हुआ शिर्क[1] है। मुसलमान जो कुछ

१. अल्लाह के साथ या उसके गुणों में किसी को साझी बनाना शिर्क कहलाता है। शिर्क करनेवाले को मुश्रिक कहते हैं।

माँगता है, अल्लाह ही से माँगता है और अल्लाह को ही मुरादें पूरी करनेवाला जानता है।

(८) हम क्या करें और क्या न करें। कौनसा काम हमारे लिये जाइज़ (करने का) है ? हलाल और हराम क्या है ? यह फ़ैसला करना भी ख़ुदा ही का हक़ है। उसके सिवा किसी को यह हक़ नहीं कि वह हमारी ज़िन्दगी के लिये कोई क़ानून बना सके। यह बात तौहीद[१] के अक़ीदे के ख़िलाफ़ है कि कोई आदमी अल्लाह के सिवा किसी और को भी क़ानून बनाने का हक़ दे या उसके क़ानून बनाने को ठीक समझे। इन्सान की ज़िन्दगी के लिये क़ानून बनाना सिर्फ़ अल्लाह का ही हक़ है। इस क़ानून को खोलकर समझाने का हक़ अल्लाह के रसूल को है या उन लोगों का है जो अल्लाह के क़ानून और उसके रसूल के हुक्मों को असली बुनियाद मानते हैं और इसी की बुनियाद पर ज़रूरत पड़ने पर उस क़ानून को लागू करने के उपाय करते हैं। इस्लाम इस बात को बिल्कुल ग़लत बताता है कि पैदा करने वाला तो कोई हो, मालिक कोई हो और हाकिम कोई और हो।

इस्लाम यह सिखाता है कि जिसने पैदा किया है, वही हाकिम है। सारे संसार में उसी का हुक्म चलता है और चलना ही चाहिये। क़ुरआन में है—

---

१. तौहीद, यानी अल्लाह को एक मानना कि अल्लाह ही पैदा करने वाला, वही पालने वाला, वही हमारी ज़रूरतें पूरी करने वाला और वही हमारा मालिक, स्वामी, हाकिम और हमारा माबूद (पूज्य) है।

إِنِ الْحُكْمُ إِلَّا لِلَّهِ أَمَرَ
أَلَّا تَعْبُدُوا إِلَّا إِيَّاهُ
ذَٰلِكَ الدِّينُ الْقَيِّمُ
وَلَٰكِنَّ أَكْثَرَ النَّاسِ
لَا يَعْلَمُونَ - (سورہ یوسف آیت ۴۰)

"हुक्म अल्लाह के सिवा किसी और का नहीं। उसका हुक्म है कि उसके सिवा किसी और की बन्दगी (ताबेदारी) न करो। यही ठीक दीन है लेकिन बहुत से आदमी इस बात को नहीं जानते।" (सूरः यूसुफ़ आयत ४०)।

मुसलमान के लिए सिर्फ़ अल्लाह तआला की बन्दगी और ताबेदारी जाइज़ है। हुक्म देने का हक़ सिर्फ़ उसी को है। चूंकि हर आदमी अपने आप अल्लाह के हुक्मों को जान नहीं सकता, इसलिए अल्लाह तआला की ताबेदारी इस तरह ही हो सकती है कि उसके भेजे हुये रसूल (सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम) की पैरवी और ताबेदारी की जाये। रसूल की ताबेदारी के बिना अल्लाह की ताबेदारी हो ही नहीं सकती। रसूल की ताबेदारी दरअसल अल्लाह की ही ताबेदारी है। अल्लाह और रसल की ताबेदारी के बाद उन तमाम लोगों की ताबेदारी भी फ़र्ज़ है जो अल्लाह के क़ानून को जाइज़ मानें और उसी के क़ानून के मुताबिक़ हुक्म चलायें। चाहे वे इस्लामी हुकूमत के हाकिम हों या मुसलमानों के लीडर या नेता या मौलवी आलिम। अल्लाह सूरः निसाअ की आयत ५९ में फ़रमाता है कि—

"मुसलमानो ! तुम अल्लाह की ताबेदारी करो, उसके रसूल की ताबेदारी करो और जो तुम में से हाकिम हो, उनकी ताबेदारी करो।" (सूरः निसाय—आयत ५६)।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا
اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوا
الرَّسُوْلَ وَاُولِى الْاَمْرِ
مِنْكُمْ۔ (سورۂ نساء آیت ۵۹)

(६) हम पर अल्लाह के बड़े एहसान हैं। उसने हमें ज़िन्दगी दी। ज़िन्दगी का सारा सामान वही देता है इसलिए यह उसी का हक़ है कि हम उसी की इबादत करें, उसी को मालिक मानकर उसी के हुक्मों के मुताबिक़ जीवन बितायें और उसी से लौ लगायें। वही अल्लाह यह हक़ रखता है कि हम उसके सामने हाथ बाँध कर खड़े हों, उसी के आगे झुकें और उसी के आगे अपना सिर ज़मीन पर रखें। उसके सिवा किसी और की चौखट पर नाक न घिसें या किसी और के दरबार में इस तरह न खड़े हों। यही तो खुला हुआ शिर्क हो जाता है।

सूरः हज में है—

"ऐ ईमान लाने वालो ! अपने रब (मालिक स्वामी) के आगे रुकू करो (झुको) सजदा करो (माथा टेको) अपने रब की बन्दगी करो और भलाई के काम करो। उम्मीद है कि इस तरह तुम कामयाब हो जाओगे।"

सूरः हज आयत ६६

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا
ارْكَعُوْا وَاسْجُدُوْا وَاعْبُدُوْا
رَبَّكُمْ وَافْعَلُوا الْخَيْرَ لَعَلَّكُمْ
تُفْلِحُوْنَ۔ (سورۂ حج آیت ۷۷)

(१०) क़ुरबानी, नज़्र, नियाज़ और मन्नत ये सब बन्दगी ही की शकलें हैं। जिस तरह सारी इबादतें सिर्फ़ अल्लाह् के लिए ठीक हैं उसी तरह इन सबका हक़दार भी अल्लाह् ही है। अल्लाह् के सिवा किसी और के नाम पर क़ुरबानी करना, चढ़ावे चढ़ाना, नियाज़ करना या मन्नत मानना शिर्क है जो दरअसल नेमतें दे जिसका सचमुच एहसान हो वही इन सारी बातों का हक़दार भी है। अल्लाह् के सिवा कोई देने वाला नहीं। इसलिए उसके सिवा कोई और इबादत का हक़दार भी नहीं।

(११) यह हक़ भी अल्लाह् का है कि इन्सान उसकी नाख़ुशी से डरे और उसकी ना फ़रमानी करते हुए काँपे। अल्लाह् के मुक़ाबले में किसी दूसरे की नाख़ुशी और ग़ुस्से से डरना ईमान के ख़िलाफ़ है। ज़िन्दगी के सारे काम अल्लाह् की हिदायत के मुताबिक़ उसकी ना फ़रमानी से बचते हुए और उसकी नाख़ुशी से डरते हुए करना च हिये। अल्लाह् के सिवा किसी दूसरे की ना फ़रमानी या नाख़ुशी से डरना ऐसा ही ग़लत है जैसे नादानी या ग़लती से किसी को वह हक़ दे दिया जाये जो हक़ सिर्फ़ अल्लाह् के लिए है। "ला इल्लाहा इल्लल्लाह्" का मतलब यही है कि अल्लाह् के सिवा कोई न पूज्य है और न मालिक, जिससे डरा जाये।

रसूल पर ईमान

इस्लाम की राह पर चलने के लिये अल्लाह के आख़िरी रसूल हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर ईमान लाना भी ज़रूरी है। इस ईमान लाने का मतलब यह है कि आपको इस बात पर दिल से पूरा-पूरा यक़ीन हो कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम अल्लाह के रसूल हैं। आपने जो कुछ फ़रमाया है, वह अल्लाह की तरफ़ से है। जो बातें आपने बतलाई हैं, वे वही हैं जो अल्लाह तआला ने आपको बताई थीं। ये सारी बातें बिल्कुल सच्ची, ठीक और ख़ुदा की तरफ़ से हैं। इन बातों में किसी तरह का शक नहीं किया जा सकता। आपने जो कुछ फ़रमाया है पूरी जानकारी के साथ फ़रमाया है। यों ही अटकल से नहीं कह दिया है। जो बातें जानकारी के बिना कही जाती हैं, वे सच भी हो सकती हैं और झूठ भी लेकिन अल्लाह के रसूल की बात को झूठ नहीं कह सकते और वह झूठ होती ही नहीं। हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि-वसल्लम को अल्लाह का आख़िरी रसूल मान लेने और आपकी हर बात को सच जान लेने के बाद ज़रूरी है कि :—

नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के हर उस हुक्म पर चला जाये जिसके बारे में यह मालूम हो जाये कि वह हुक्म नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ही का है। इसलिये कि नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम का हुक्म सचमुच अल्लाह का हुक्म है और

अल्लाह तआला अपने बन्दों में से किसी को रसूल इसीलिये बनाता है कि लोग उसकी ताबेदारी करें। उसके कहे पर चलें और अपनी ज़िन्दगी के सारे कामों में वही रास्ता अपनायें जो अल्लाह के रसूल का है।

हर वह बात छोड़ दी जाये जिसके बारे में यक़ीन हो जाये कि अल्लाह के रसूल ने उसके करने से रोका है क्योंकि यह बात बिल्कुल ग़लत है कि आप हुज़ूर को अल्लाह का रसूल मानें लेकिन उनके हुक्म को टालकर मनमानी करें। जान बूझकर ऐसा करना ऐसा ही है जैसा रसूल को रसूल न मानना। एक बार नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फ़रमाया "मेरी उम्मत का हर आदमी जन्नत में जायेगा लेकिन वह जन्नत में नहीं जा सकेगा जो मुझे न माने"। सहाबा (आपके प्यारे साथियों) को बड़ा ताज्जुब हुआ कि कोई हुज़ूर का उम्मती भी हो और फिर आपको माने भी नहीं। उन्होंने हुज़ूर से पूछा "हुज़ूर यह कैसे हो सकता है कि कोई आपका उम्मती भी हो और फिर वह आपको माने भी नहीं या आपका इन्कार करे या आपको झुठलाये ?

आपने फ़रमाया, जो कोई मेरी ताबेदारी करेगा वह ज़रूर जन्नत में जायेगा लेकिन जिसने मेरा कहा न माना और उसने मेरे हुक्म को टाल दिया, उसने मेरा इन्कार नहीं किया।"

बात बिल्कुल खुली हुई है। यह कैसे हो सकता है कि एक तरफ़ तो आप किसी को अल्लाह का रसूल मानें। उसके हुक्मों को अल्लाह के हुक्म जानें और फिर जानबूझ कर ऐसे काम करते रहें जो रसूल के हुक्मों के बिल्कुल खिलाफ़ हों ऐसे लोग सचमुच

हुजूर के उम्मती नहीं हो सकते। मुसलमान किसी ऐसे हुक्म को नहीं मान सकता जो अल्लाह और उसके रसूल के हुक्मों ख़िलाफ़ हो। ज़िन्दगी के सारे कामों में मुसलमान को सिर्फ़ उन हुक्मों की ताबेदारी करना चाहिये जिनकी बुनियाद अल्लाह की किताब और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सुन्नत पर हो। दुनिया का कोई लीडर, कोई महात्मा, कोई नेता, कोई बड़े से बड़ा आदमी कोई आलिम कोई पीर, फ़क़ीर, साधू, सन्त, कोई हाकिम इस क़ाबिल नहीं कि मुसलमान उसके किसी हुक्म को इसलिये मान लें कि वह उसका हुक्म है। मुसलमान किसी की ऐसी ताबेदारी को नहीं मानते जो अल्लाह के रसूल के हुक्मों से आज़ाद हो।

इस्लाम हर उस चीज़ को हक़ (सत्य) मानता है जो अल्लाह की तरफ से हो और जिसे उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया हो। इसके सिवा हर वह चीज़ जो उस हक़ (सत्य) के खिलाफ़ हो, बातिल (झूठ) हैं मुसलमान को चाहिये कि वह किसी ऐसे तरीक़े और रिवाज़ को न अपनायें ज़ो अल्लाह के रसूल के बतलाये हुये तरीक़े के खिलाफ़ हो, चाहे वह रिवाज उसके ख़ानदान या उसकी बिरादरी या समाज का कितना ही पुराना हो और लोग उस पर कितनी ही मज़बूती से अड़े हुये हों।

अल्लाह के रसूल पर ईमान लाने के बाद किसी काम को यह कहकर करना या करते रहना कि ऐसा तो "हमारे यहाँ पूर्वजों से होता आया है" हरगिज़ ठीक नहीं है। किसी बात पर इस तरह अड़ने और ज़िद करने से तो यह भी डर है कि कहीं

कोई शख़्स दीन से निकल न जाये। ऐसी वात हमेशा मुश्रिकों और काफ़िरों ने कही है।

मुसलमान को चाहिये कि उन तमाम बातों पर यक़ीन करले जो नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने बताई हैं, चाहे वे बातें समझ में आती हों या न आती हों। समझ का काम बस इतना ही है कि वह रसूल के बारे में अच्छी तरह जाँच परख कर यह फ़ैसला करले कि सचमुच वह अल्लाह का रसूल है, या नहीं ? जब पूरी तरह यक़ीन हो जाये तो फिर उसकी बताई हुई बातों में से कुछ को मानना और कुछ को न मानना बिल्कुल ग़लत है। अल्लाह के रसूल बहुत सी बातें ऐसी बताते हैं जिनको हम ख़ुद नहीं जान सकते जैसे अल्लाह तआला कैसा है ? फ़रिश्तों का हाल, जन्नत, जहन्नम और क़ियामत की बातें या किसी तरह पिछली क़ौमों का हाल, पिछली किताबों और पिछले रसूलों का हाल, जिनके जानने के लिये हमारे पास कोई ऐसा ज़रिया (साधन) नहीं, जिस पर यक़ीन किया जा सके। इन सारी बातों को उसी तरह मानना ज़रूरी है जिस तरह वे बातें नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से साबित (सिद्ध) हों। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को अल्लाह तआला ने बहुत सी ऐसी बातें बता दी थीं जिनको हम नहीं जान सकते, जबकि उनके बारे में कुछ न कुछ जानना बहुत ज़रूरी था और आज भी है। हुज़ूर ने ऐसी सारी बातों को खोल-खोल कर बताया है। इन बातों के बताने में आपने कभी कोई कमी नहीं की।

ऐसी सारी बातों पर ईमान लाना उसी तरह ज़रूरी है जिस तरह नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है।

दावेदारी के साथ-साथ नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से गहरा प्रेम रखना चाहिये, यही ईमान लाने का मतलब है। अगर किसी के दिल में हुज़ूर से सबसे ज्यादा मुहब्बत और हुज़ूर का अदब व आदर न हो तो यह इस बात की पहचान है कि अभी दिल में पूरा-पूरा ईमान नहीं उतरा है।

"मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह"

कहने का मतलब यही है। यह है वह हमारा कलमयेतय्यिबः (पाक और पवित्र कलमा)

ला इलाहा इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाहि

जिसको समझ कर पढ़ने और जिस पर दिल से ईमान लाने के बाद ही मनुष्य मुसलमान होता है। जब तक कोई इस कलमा के मतलब को सोच समझ कर इस पर ईमान न लाये, वह मुसलमान ही नहीं होता। यही कलमा इन्सान को अल्लाह की रहमतों का हक़दार बनाता है। यही कलमा जन्नत की कुंजी है। यही कलमा आखिरत में निजात और कामयाबी का ज़रिया है।

नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इस कलमे के पढ़ने वाले को जन्नत की खुशखबरी दी है। एक बार आपने अपने एक सहाबी (प्यारे साथी) हज़रत मुआज़ रज़ियल्लाहु अन्हु से फ़रमाया। "जो कोई सच्चे दिल से लाइलाहा इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाहि की गवाही दे तो अल्लाह तआला ने इस पर जहन्नम की आग हराम कर दी।

आप ख़ुद समझ सकते हैं कि इतनी बड़ी ख़ुशख़बरी कुछ यों ही नहीं दे दी गई है बल्कि अगर कोई कलमा तय्यिब: के मतलब पर ध्यान दे और यह सोचे कि सच्चे दिल से लाइलाहा इल्लल्लाह कहने के बाद मेरे अन्दर क्या क्या तबदीली होना ज़रूरी है और इसी तरह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह कहने का मतलब क्या है ? तो आपका दिल ख़ुद गवाही देगा कि जो आदमी अल्लाह और रसूल की ताबेदारी और फ़रमाबरदारी के सिवा हर तरह की ताबेदारी और बन्दगी से मुंह मोड़ ले और अपनी पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह के हुक्मों का ताबेदार हो जाये तो उसे इतना ही बड़ा बदला मिलना ही चाहिये। जो बन्दा इस दुनिया के सच्चे हाकिम और मालिक की वफ़ादारी का हक़ इस तरह अदा करे कि उसके सिवा वह हरएक का बाग़ी बन जाये तो ज़ाहिर है कि इस संसार का स्वामी अपनी कृपा से उसे जितना चाहे, बदला दे । जो लोग कलमा तय्यिब: के मतलब पर तो ध्यान नहीं देते और सोचे समझे बिना यों ही कलमा तय्यिब: के पढ़ लेने को काफ़ी समझते हैं वे बड़े धोखे में हैं। अल्लाह तआला को हमारे मुंह से निकले हुये बोल नहीं चाहिये बल्कि उसे ख़ुश करनें के लिये दिल का झुकाव और जि़न्दगी में तबदीली ज़रूरी है कलमा तय्यिब: सचमुच एक पक्का इक़रार (प्रतिज्ञा) है जो बन्दा अपने मालिक से करता है। इस कलमे को पढ़कर बन्दा अपने मालिक के सिवा हर एक की बन्दगी का और अपने अल्लाह के सिवा हर एक की ख़ुदाई का खुल्लम-खुल्ला इन्कार करता है। उस बादशाहों के बादशाह की वफ़ादारी का हलफ़ उठाकर उसके हर बाग़ी की

हुकूमत से बग़ावत करता है, उसके प्यारे नबी की सच्चाई की गवाही देता है और अपने आपको बिल्कुल अल्लाह और उसके रसूल के हवाले कर देता है। यह इक़रार (प्रतिज्ञा) ज़िन्दगी का सबसे बड़ा इक़रार है। इस इक़रार से पहले और इस इक़रार के बाद इन्सान की ज़िन्दगी एक सी नहीं रह सकती। जो लोग सोच समझ कर उस मालिक की वफ़ादारी का हलफ़ उठायें और जो लोग नादानी या मूर्खता के कारण उससे बग़ावत करें उनकी ज़िन्दगी कभी भी एक-सी नहीं हो सकती।

आख़िरत पर ईमान

एक दिन ऐसा आयेगा जब यह दुनिया और दुनिया की हर चीज़ तहस नहस हो जायेगी। अल्लाह के हुक्म से ज़मीन और आसमान की सारी चीजें टूट फूट जायेंगी सारे जीव मर जायेंगे और संसार का यह कारख़ाना अचानक रुक जायेगा।

इसके बाद तमाम इन्साने दूसरी बार ज़िन्दा किये जायेंगे। जिस अल्लाह ने इन्सान को पहली बार पैदा किया था, वही सारे इन्सानो को ज़िन्दा करके उठायेगा। सारे इन्सान अल्लाह तआला के हुज़ूर हाज़िर किये जायेंगे। सब के कर्मों की जाँच परताल और तुलना होगी। इस दुनिया की ज़िन्दगी में जिस ने जो नेकियाँ की होंगी, उनका उसे अच्छा बदला मिलेगा और जिसने जो बुराई की होगी, वह उसका बुरा फल भुगतेगा। दुनिया में जो लोग अल्लाह के बाग़ी थे और समझते थे कि इस बग़ावत की उनसे कोई पूछ गछ न

होगी। वे उस दिन बड़े घाटे में रहेंगे। वे उस दिन बड़े कड़े अज़ाब में होंगे उस दिन सारे सुख और नेमतें अल्लाह के वफ़ादार बन्दों के लिये होंगी। इस दुनिया में अल्लाह के जो वफ़ादार बन्दे मुसीबतों में फंसे रहे और अल्लाह की मर्ज़ी की खातिर दुख पर दुख झेलते रहे, उन पर उस ज़िन्दगी में अल्लाह की अनगिनत रहमतें होंगी वे अपनी वफ़ादारी का पूरा पूरा बदला पायेंगे।

उस दिन का नाम आख़िरत है। आख़िरत का दिन आकर रहेगा। उस इन्साफ़ के दिन को आना भी चाहिये ताकि पूरा पूरा इन्साफ़ होकर अच्छे कर्म करने वालों को अच्छा वदला और बुरे कर्म करने वालों को बुरा बदला मिले।

इस्लाम का तीसरा बुन्यादी अकीदा यही आख़िरत का अक़ीदा है। यह अक़ीदा इस्लाम की जान है। क़ुरआन मजीद में आख़िरत के बारे में बार-बार इतना ज़्यादा आया है कि क़ुरआन की कोई वात आख़िरत के ध्यान दिलाने से खाली नहीं। इस्लाम इस सच्ची बात को हर वक़्त इन्सान के सामने रखना चाहता है।

आख़िरत पर ईमान लाने और हर वक़्त सामने रखने का ठीक-ठीक मतलव वहुत कम लोग जानते हैं। दूसरे धर्मों में उन लोगों को बहुत ऊँचा दरजा दिया जाता है जो दुनिया को छोड़ कर किसी कोने या वन में जा बैठें और दुनिया के धन्धों से मुंह मोड़ कर बस ईश्वर से लौ लगायें। कुछ लोग समझते हैं कि शायद इस्लाम भी दुनिया को छोड़वा देना अच्छा समझता है। ऐसा नहीं है। इस्लाम दुनिया छोड़ देने को ग़लत बताता है।

नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फ़रमाया है कि:—

"इस्लाम में दुनिया छोड़ देना नहीं है' क़ुरआन पाक में ईसाई राहिबों (जो दुनिया छोड़ देते हैं) के बारे में फ़रमाया है :—

"हमने उन्हें दुनिया छोड़ देने का हुक्म नहीं दिया था बल्कि हुक्म दिया था वे हमारी मरज़ी के काम करें मगर उन्होंने दुनिया छोड़ने वाली बात अपनी तरफ़ से नई निकाल ली है और फिर वे इसका भी हक़ अदा न कर सके।" (हदीद—२७)

इस्लाम की नज़र में आख़िरत पर ईमान लाने और हर समय आख़िरत को सामने रखने का मतलब कुछ और है। इस्लाम सारे इन्सानों को दो जत्थों में बाँटता है। एक वे लोग जो दुनियादार हैं। ये दुनिया ही के लिए जीते हैं और दुनिया ही के लिये मरते हैं। हद यह है कि वे नेकियाँ भी दुनियां ही के लिए करते हैं।ख़ुदा का नाम दुनिया के फ़ायदों के लिए लेते हैं। धर्म का ढोंग दुनिया ही के लिए रचाते हैं। इनके सामने दुनिया की इज़्ज़त, दुनिया के फ़ायदे और दुनिया को दिखाने के सिवा कुछ नहीं होता। ऐसे लोग चाहे वे ख़ुदा, आख़िरत, दीन और धर्म को मानें या न मानें, एक जत्था हैं। इस जत्थे को दुनिया का पुजारी (दुनियादार) कहा जाता है। दूसरा जत्था वह है जिसके सामने आख़िरत की कामयाबी और अल्लाह की मरज़ी होती है। ये ज़िन्दगी का हर काम अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ करते हैं। दुनिया के कामों को छोड़कर बनों और पहाड़ों को नहीं भागते और न कोनों में जा बैठते हैं। ये दुनिया के प्रबन्ध को ख़ुद संभालते हैं और सब कुछ अल्लाह की मरज़ी के मुता-

बिक़ चलाते हैं। बीवी-बच्चे, घर-बार, कुल परिवार, व्यापार, कला-कारीगरी और राजनीति मतलब यह कि दुनिया के हर काम को ये उस रंग में रंगना चाहते हैं, जो उनके मालिक को पसन्द है। उनके सामने सिर्फ़ आख़िरत की कामयाबी होती है। ये हर क़ीमत पर अपने अल्लाह को राज़ी करना चाहते हैं। अल्लाह की मरज़ी से हटकर उनकी नज़र में किसी चीज़ की कोई क़ीमत नहीं होती। उन्हें सिर्फ़ वे काम पसन्द होते हैं जो उनके अल्लाह को पसन्द हों ऐसे काम करने की उनपर एक धुन सवार हो जाती है बिल्कुल उसी तरह की धुन, बल्कि उससे भी ज़्यादा, जैसी एक दुनियादार को रुपया कमाने की धुन होती है। ये एक आँख नहीं देख सकते कि दुनिया में अल्लाह के हुक्मों को टाला जाए। अल्लाह से बग़ावत की जाये। ये जानते हैं कि अगर इस दशा में उन्होंने अपने मालिक की वफ़ादारी का हक़ अदा न किया तो मालिक उनसे नाराज़ हो जायेगा। ऐसे वक्त में कमज़ोरी दिखाना वे आख़िरत में अपनी सबसे बड़ी हार और असफलता (नाकामी) समझते हैं। जहन्नम की आग और आख़िरत के अज़ाब से बचने के लिये वे इस दुनिया की हर तरह की मुसीबत और दु:ख झेलने को तैय्यार रहते हैं। वे इस संसार के असली बादशाह (अल्लाह) के वफ़ादार सिपाही होते हैं। वे यह कभी नहीं देख सकते कि उनकी किसी बात या उनके किसी काम से उस वफ़ादारी को ठीस लगे, जिसका इक़रार उन्होंने अपने अल्लाह से किया है। इसके लिये वे अपना सब कुछ लगा देते हैं। वे जान भी निछावर कर देते हैं वे अपनी वफ़ादारी में जान निछावर कर देना सबसे बड़ा काम समझते हैं। अल्लाह की

मरज़ी पर अपनी जान निछावर कर देना ही उनके ईमान की जान होती है। यही लोग सचमुच कामयाब हैं। इनका मर्तबा (पद) ऊँचा है। बड़ाई का असल फ़ैसला आख़िरत की कामयाबी पर है। जो वहाँ कामयाब है। वह बड़ा है। जो वहाँ असफल (नाकाम) है, वही बुरा और ज़लील है।

इस दुनिया में अल्लाह के दीन पर जमे रहने के लिए बड़ी बहादुरी की ज़रूरत है। दीन की राह पर चलने में सैकड़ों कठि-नाइयों का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले इन्सान को अपने मन से लड़ना पड़ता है। मन कुछ चाहता है। दीन कुछ चाहता है। मन चाहता है कि नाच देखा जाए। दीन मना करता है कि नाचना और नाच देखना हराम है। इन्सान का दिल उन फ़ायदों की तरफ़ लपकता है, जो जल्द ही मिलने वाले हों। इन्सान का दिल मज़े चाहता है और ये मज़े उसे पाप की तरफ़ ले जाते हैं मगर दीन पाप करने से रोकता है। इस तरह सबसे पहली लड़ाई अपने मन ही से लड़ना पड़ती है।

फिर जब अल्लल्ह के दीन का झंडा ऊँचा करने वाला यह एलान करता है कि वह ख़ुदा के सिवा किसी और को पूज्य नहीं बनाता, ख़ुदा के सिवा किसी और को बड़ा नहीं मानता, ख़ुदा के सिवा किसी ऐसे के हुक्मों पर नहीं चल सकता जिसके हुक्म ख़ुदा के हुक्मों से टकरायें और वह अल्लाह के रसूल के सिवा किसी दूसरे की पैरवी नहीं कर सकता वह ख़ुदा की बड़ाई के सामने बड़े से बड़े बादशाह, महाराजा, बड़े से बड़े नेता, लीडर, डिक्टेटर, महा पंडित, पादरी, पीर आदि की बड़ाई को ग़लत बताता है -तो ये सभी उसकी दुश्मनी पर उठ खड़े होते हैं। ऐसे वक्त में अल्लाह

के बन्दे को बड़ी कड़ी परीक्षा देनी पड़ती है। एक तरफ़ अल्लाह का दीन और उसकी मांगें हैं। दूसरी तरफ़ उसके अपने मन की कामनायें और दुनियावालों के दबाव होते हैं। एक तरफ़ अल्लाह का बन्दा अल्लाहु अकबर कह कर दुनिया के हर बड़े का सिर अल्लाह के आगे झुका देना चाहता है। दूसरी तरफ़ दुनिया भर के बड़े उसकी जान के बैरी हो जाते हैं। ऐसे वक्त में उसकी हिम्मत बंधाने और उसके दीन पर जमे रहने के लिए इस बात की ज़रूरत है कि उसे आखिरत पर पूरा-पूरा यक़ीन हो। यह यक़ीन जितना ही पक्का होगा उतना ही इस्लाम की राह पर जमना आसान होगा

अल्लाह पर ईमान, अल्लाह के रसूल पर ईमान और आखिरत पर ईमान लाने के बाद यों तो हर उस बात पर ईमान लाना ज़रूरी है, जो अल्लाह तआला ने अपनी किताब क़ुरआन पाक में बताई है। या अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाई है लेकिन इनमें से कुछ बातें बहुत ज़रूरी हैं। मुसलमान होने के लिये उन सब पर ईमान लाना ज़रूरी है।

(१) क़ुरआन पाक से पहले अल्लाह तआला ने जो किताबें इन्सानों को सीधी राह पर लाने के लिये उतारीं, उन सब पर ईमान लाना जैसे तौरेत, ज़बूर, और इंजील।[१]

---

[१] बड़े दुख की बात है कि आज ये किताबें अपनी असली हालत में मौजूद नहीं। उनके माननेवालों ने उनमें बहुत सी बातें अपनी तरफ़ से बढ़ा दी हैं इसीलिये वे अपनी मौजूदा शकल में सारी की सारी अल्लाह की ओर से उतारी हुई मानी नहीं जा सकतीं बल्कि इस हद तक जिस हद तक वे क़ुरआन से मिलती हैं।

(२) अल्लाह के भेजे हुये उन तमाम रसूलों पर ईमान लाना, जिन्हें अल्लाह तआला ने इन्सानों को सीधी राह पर चलाने के लिये भेजा। इनमें से कुछ के नाम तो क़ुरआनमजीद में हैं पर इनके अलावा भी और बहुत से नबी हुये हैं।

(३) अल्लाह के फ़रिश्तों पर भी ईमान लाना बहुत ज़रूरी है। अल्लाह ने फ़रिश्तों को नूर से बनाया है। ये फ़रिश्ते अल्लाह के पूरे-पूरे ताबेदार हैं उनमें हुक्म टालने की बात अल्लाह ने नहीं रखी। ये फ़रिश्ते अल्लाह के हुक्म और इशारों पर चलते है। अल्लाह के हुक्म से दुनिया के बड़े छोटे काम पूरी ताबेदारी से करते हैं। फ़रिश्ते अपनी मरज़ी से कुछ नहीं कर सकते। वे बिल्कुल अल्लाह के हुक्मों के पाबन्द हैं। हम उनके बारे में बस इतना ही जानते हैं जितना अल्लाह ने नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम को और फिर आपने हमें बताया है। हम फ़रिश्तों को देख नहीं सकते और न वे खुद हमारे किसी काम आ सकते हैं। उनसे कोई सम्मीद लगाना या उनसे कुछ माँगना बिल्कुल ग़लत है। वे बस अल्लाह के ताबेदार है और वही काम करते और कर सकते हैं जिसका उन्हें हुक्म दिया जाता है। उनको मानना और उनके बारे में बस इतनी ही बातों को सच जानना चाहिये जो अल्लाह और उसके रसूल ने बताई हैं। फ़रिश्तों पर ईमान लाने और उनको मानने का मतलब यही है।

(४) दुनिया में जो कुछ होता है, वह अल्लाह के हुक्म से होता है। अल्लाह ही के बनाये हुये क़ायदे व क़ानून के मुताबिक़ होता है कोई काम उसकी मरज़ी और उसके चाहे

बिना नहीं हो सकता। इसीका नाम तक़दीर इलाही (यानी अल्लाह की बनाई हुई तक़दीर) है। मुसलमान अल्लाह की मरज़ी पर राज़ी और ख़ुश रहता है। वह जानता है कि होगा वही, जो अल्लाह चाहता है तो फिर वह अपनी पूरी ताकत अल्लाह की मरज़ी पूरी करने में लगा देता है।

अमलेसालिह

इस्लाम में 'ईमान' के बाद 'अमलेसालिह' का नम्बर है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने ईमान लानेवालों से बहुत से वायदे किये हैं। आख़िरत में ईमान लानेवाले को यह और यह इनाम मिलेगा ऐसी और ऐसी नेमतें मिलेंगी आदि परन्तु हर वायदा इस शर्त के साथ है कि ईमान लाने के साथ-साथ अमलेसालिह भी करो। अब जो अपने अल्लाह को ख़ुश करना और आख़िरत में कामयाब (सफल) होना चाहता है, उसके लिए ज़रूरी है कि वह 'अमलेसालिह' के बारे में अच्छी तरह समझ ले, नहीं तो याद रहे कि जिसका जीवन अमलेसालिह से ख़ाली रहा, वह अभागी घाटे में ही रहा। आइये, हम बतायें कि अमलेसालिह का मतलब क्या है ?

अमलेसालिह उन सारे कामों को कहते हैं जो अल्लाह के बताये हुए तरीक़े और अल्लाह के बनाये हुए क़ानून के मुताबिक़ किये जायें और केवल अल्लाह ही को ख़ुश करने के लिए किये जायें।

इस्लाम दीन और दुनिया को अलग-अलग नहीं करता। इस्लाम इस बात को ग़लत बताता है कि कुछ कामों को दीन व धर्म का काम समझ लिया जाये और कुछ कामों को दुनिया

का काम। दूसरे धर्मों वाले तो पूजा-पाठ और कुछ धार्मिक कामों को धर्म का काम समझते हैं। उनको छोड़कर घर-बार, व्यापार, नौकरी, राजनीति और राजकाज को दुनिया का काम जानते हैं। इस तरह जानने, मानने और सोचने का नतीजा यह निकलता है कि लोग कुछ थोड़े ही कामों को धर्म के मुताबिक़ करते हैं पर जीवन के बहुत सारे कामों को धर्म से आज़ाद होकर करते हैं। धर्म से आज़ाद जो काम किये जायेंगे, ज़ाहिर है कि वे इस तरह किये जायेंगे जिस तरह इन्सान का जी चाहेगा या फिर इन्सान किसी दूसरे इन्सान के कहे पर चलेगा और वे काम करेगा जो दूसरा उससे करने को कहेगा। इस तरह कभी एक राह चलेगा, कभी दूसरी राह जायेगा। यह रोग आजकल हमारे समाज में अच्छी तरह घुस आया है। बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग इस धोखे में हैं और दुःख की बात यह है कि इस राह को ठीक ही नहीं समझते बल्कि उल्टे दूसरों को नसीहत करते हैं कि हर मामले में मजहब को टाँग नहीं अड़ाना चाहिये। ऐसे लोग इस बात को बड़ा भयानक रूप देते हैं कि लोग जीवन की हर बात धर्म के मुताबिक करने लगें।

जहाँ तक दूसरे धर्मों की बात है हम नहीं कह सकते कि उनके यहाँ ऐसा है या नहीं है। हो सकता है कि कुछ धर्मों में ऐसा ही हो। इसीलिए तो उस धर्म के विद्वान, नेता और लीडर अपने धर्मवालों को यही बताते हैं, लेकिन इस्लाम इस बात को ग़लत बताता है। इस्लाम में कहीं कोई ऐसा हुक्म नहीं है कि इस तरह इन्सान के जीवन को बांट दिया जाये। इस्लाम की शिक्षा इस बारे में बड़ी साफ़ और सीधी है। इस्लाम कहता है

कि इन्सान का पैदा करने वाला अल्लाह है। अल्लाह ही ने इन्सान को ज़िन्दगी दी। इसमें उसका कोई साझी और शरीक नहीं। इन्सान सिर्फ़ उसी का बन्दा है किसी दूसरे का नहीं। इसलिए इन्सान को अल्लाह का हुक्म मानना चाहिये! इस्लाम कहता है कि इन्सान पूरे जीवन में हर काम उसी अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ करे। एक दास के बहुत से स्वामी नहीं हो सकते। क़ुरआन कहता है कि—

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ادْخُلُوْا فِي السِّلْمِ كَآفَّةً ص

(البقرہ آیت ۲۰۸)

"ऐ ईमानवालो! इस्लाम में पूरे दाखिल हो जाओ।"

(अलबकरः—२०८)

वह यह भी कहता है कि—

ءَاَرْبَابٌ مُّتَفَرِّقُوْنَ خَيْرٌ اَمِ اللّٰهُ الْوَاحِدُ الْقَهَّارُ

(سورۂ یوسف آیت ۳۹)

"क्या बन्दगी के लिए बहुत से स्वामी अच्छे या एक अल्लाह, जो सबसे ज़्यादा ज़बरदस्त है।"

(यूसुफ़—३९)

अल्लाह ने तो क़ुरआन में यह तक फ़रमा दिया है कि—

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْاِنْسَ اِلَّا لِيَعْبُدُوْنِ.

(الذاریات آیت ۵۶ و ۵۷)

"हमने इन्सान और जिन्न को पैदा इसीलिए किया है कि वे केवल मेरी ताबेदारी करें।"

(वज़्ज़ारियात—५६,५७)

सोचिये तो बात भी यही ठीक मालूम होती है कि जब पैदा करनेवाला अल्लाह, जीवन देनेवाला अल्लाह, जीवन का सारा सामान बनाने और देनेवाला अल्लाह, हमारी रक्षा करनेवाला, हमारी मौत व ज़िन्दगी का मालिक और हमारा मालिक, दाता, हाकिम अल्लाह है और सब कुछ अल्लाह ही का है तो फिर हमारा पूरा जीवन उसी के लिए होना ही चाहिये।

अब सोचिये इन्सान की पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की बन्दगी के लिए है। इन्सान पैदा ही बन्दगी के लिए हुआ है। तो क्या इसका मतलब यह है कि इन्सान हर वक़्त नमाज़ पढ़ता रहे? या सदा रोज़े से रहे? या इसी तरह जो और इबादतें हैं, उन्हीं में अपना पूरा वक्त लगा दे। ज़ाहिर है कि न ऐसा हो सकता है, न अल्लाह तआला किसी को ऐसी बात का हुक्म दे सकता है। इसका मतलब सचमुच यह है कि इन्सान की पूरी ज़िन्दगी 'अमलेसालिह' बन जाये। उसका हर काम इबादत बन जाये। उसका सोना, उसका जागना, उसका चलना-फिरना, रोज़ी कमाना, बीबी-बच्चों की देखभाल करना, देश के कामों में दिल लगाना, राजनीति व राजकाज में हाथ बटाना, ये सब सारे का सारा 'अमलेसालिह' हो जाये। ये सारे काम जो देखने में बिलकुल दुनिया के काम हैं। ये भी उसी तरह किये जायें, जिस तरह अल्लाह का हुक्म है और इसलिए किये जायें कि अल्लाह हम से खुश हो तो ये सारे ही काम इबादत हो जाते हैं। इस्लाम हर एक के जीवन को इसी तरह ढाल देना चाहता है। इस्लाम दुनिया और दीन के कामों को अलग-अलग छाँट कर नहीं रखता बल्कि वह पूरे जीवन के लिए क़ानून और विधान देता है। उसने

एक-एक व्यक्ति की अपनी ज़िन्दगी से लेकर राजकाज और राजनीति तक पूरा विधान नियत कर दिया है। हर मामले में सिर्फ़ अल्लाह की ताबेदारी और उसकी ख़ुशी हासिल करने पर उभारता है। इस तरह जो काम 'अमलेसालिह' में आते हैं, उन सबको इस्लाम दीनदारी के काम कहता है। जो काम 'अमले-सालिह' में नहीं आते, वे सब दुनिया के काम हैं। चाहे वे देखने में कैसे ही धार्मिक काम दिखाई देते हों। मान लीजिये भूखों को खाना खिलाने का काम है। यह एक अच्छा और नेकी का काम है। यही काम इस्लाम में नेक काम उसी वक्त कहा जायेगा, जब उसे अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ किया जाये और अल्लाह ही की ख़ुशी के लिए किया जाये। अगर ऐसा नहीं है तो यह काम नेकी का काम नहीं होगा। जो काम लोगों को ख़ुश करने या अपना नाम करने के लिए या किसी और गरज़ के लिए किया जाये, वही दुनिया का काम हो जायेगा। इस बात को अच्छी तरह समझाने के लिए नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने एक बार फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन सबसे पहले जिन लोगों का फ़ैसला होगा, उनमें तीन तरह के मनुष्य होंगे एक वह जिसने अल्लाह के दीन के लिए अपनी जान दी होगी। उसको अल्लाह के सामने लाया जायेगा। अल्लाह तआला उसको अपनी वे नेमतें याद दिलायेगा, जो उसे दुनिया में दी गई थीं और पूछा जायेगा कि तूने इन नेमतों का शुक्र किस तरह अदा किया ? वह कहेगा "ऐ अल्लाह ! मैंने तेरी राह में जान तक दे दी।" उसे जवाब मिलेगा कि तू झूठ बोलता है। तूने इसलिए लड़ाई लड़ी थी कि

लोग तुझे वीर और बहादुर कहें। लोगों ने तुझे बहादुर कह दिया। इस जवाब के बाद हुक्म होगा कि इसे मुँह के बल घसीट कर जहन्नम में डाल दो।

फिर एक दूसरा आदमी सामने लाया जायेगा, जिसने दीन का इल्म हासिल किया होगा और क़ुरआन पढ़ा होगा। अल्लाह तआला उसको अपनी नेमतें याद दिलायेगा। उससे पछा जायेगा कि तूने इन नेमतों का क्या-क्या शुक्र अदा किया ? वह कहेगा कि ऐ अल्लाह ! मैंने तेरी ख़ुशी के लिए दीन का ज्ञान हासिल किया था और दूसरों को सिखाया था। जवाब मिलेगा कि तू झूठ कहता है। तूने इसलिए दीन सीखा कि लोग तुझे आलिम (विद्वान) मानें। तुझे आलिम कह दिया गया। इस जवाब के बाद हुक्म होगा कि इसे मुँह के बल घसीटकर जहन्नम में डाल दो।

इसी तरह तीसरा आदमी अल्लाह की अदालत में पेश होगा जिसको अल्लाह तआला ने बहुत-सा धन-दौलत दिया होगा। उसे भी अल्लाह की नेमतें याद दिलाई जायेंगी। उससे पूछा जायेगा कि तूने इन नेमतों का क्या शुक्र अदा किया। वह कहेगा 'ऐ अल्लाह ! मैंने कोई ऐसा मौक़ा हाथ से जाने नहीं दिया, जिसमें धन-दौलत ख़र्च करना तुझे पसन्द था और मैंने माल खर्च न किया हो। जवाब मिलेगा कि तू झठ कहता है। तूने ये सारे काम इसलिये किये थे कि तुझे दानी और सख़ी कहा जाये, तो तुझे सख़ी और दानी कह दिया गया। फिर हुक्म होगा कि इसे मुंह के बल घसीटकर जहन्नम में डाल दिया जाये।"

हुज़ूर की इस हदीस को सामने रखिये। आप यही फ़ैसला करेंगे कि कभी तो नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात जैसी इबादतें भी पूरी-की-पूरी दुनिया का काम होकर रह जाती हैं और कभी दुनिया के काम इबादत बन जाते हैं। दूसरे धर्मों के मुकाबिले में इस्लाम में यही ख़ास बात है। इस्लाम में दीन और दुनिया अलग-अलग नहीं किये जा सकते। मुसलमान किसी काम के बारे में यह नहीं कह सकता कि यह तो दुनिया का काम है। इसके बारे में यह सोचना ज़रूरी नहीं कि अल्लाह की मरज़ी और इस्लाम का हुक्म क्या है? मुसलमान का हर काम अल्लाह की मरज़ी और दीन के हुक्म के मुताबिक़ ही होना चाहिये।

अल्लाह के कुछ बन्दे ऐसे हैं जो यह कहकर लोगों को धोका देते हैं कि जहाँ तक तुम्हारे अपने मामले की बात है, वहाँ तक तो सचमुच इस्लाम के हुक्मों और अल्लाह के क़ानून पर ही चलना चाहिये लेकिन वे बातें जो देश और राजनीति की हैं और जो मुस्लिम व ग़ैरमुस्लिम सब के लिए हैं, उनमें अल्लाह के क़ानून की पैरवी नहीं होना चाहिये। धर्म की बात तो हर एक के अपने जीवन से है। देश, राज और राजनीति से उसका जोड़ मिलाना ठीक नहीं। इस्लाम इस बात को बिल्कुल ग़लत कहता है।

अब से पहले राज्य की देखभाल का काम बादशाहों या राजाओं के हाथों में होता था इनमें से ज़्यादातर लोग ऐश व आराम और अपने मन की मौज में मस्त रहते थे। जब तकप्रजा उनको बड़ा मानती थी और जिस तरह वे चाहते, उनके ख़ज़ानों

को भरती रहती थी, उस वक्त तक ये इससे ज्यादा किसी बात की परवाह नहीं करते थे। जनता जिस तरह के चाहे अपने अक़ीदे रखे। अपने बच्चों को जो चाहे, वह शिक्षा दे। अपने जीवन को जिस राह पर चाहे लगाये। बादशाह और राजा महाराजा प्रजा के विचारों, अकीदों, प्रजा के रहन-सहन, उनकी शिक्षा और उनकी सभ्यता व तहज़ीब के बारे में रोक-टोक नहीं करते थे !

आज क्या हाल है ? आजकाल सरकार जनता की होती है। जनता की पसन्द और नापसन्द पर क़ानून बनते हैं जिन लोगों के हाथों में हुकूमत होती है, वे जनता को अपने रंग में रंगना चाहते हैं। जो उनको पसन्द हो। उनकी हुकूमत रहती ही उसी वक्त तक है, जब तक जनता उनके साथ है यही कारण हैं कि आज जीवन के हर मामले पर हुकूमत का असर पड़ता है। शिक्षा वही दी जाती है जो हुकूमत चाहे और जो उसके फ़ायदे की हो। क़ानून वही बनते और पास होते हैं जिन्हें हुकूमत करनेवाले लोग पसन्द करें। देश ही के इन्तिज़ाम के लिए नहीं, बल्कि हर हर आदमी और ख़ानदानी मामलों के बारे में भी वही क़ानून बनते हैं जिन्हें हुकूमत के ज़िम्मेदार अच्छा समझें। युद्ध (लड़ाई) और संधि (समझौते) के जो तरीके अपनाये जाते हैं। उनसे कोई अपने को अलग नहीं कर सकता। आजकल लड़ाई की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ हुकूमत (सरकार) पर ही नहीं होती बल्कि देश का हर आदमी किसी-न-किसी तरह उसमें साझी होता है।

अब सोचिये, मुसलमान क्या करे ? जिसने अल्लाह से यह

इक़रार किया हो कि वह ज़िन्दगी के हर मामले में सिर्फ़ उसी की ताबेदारी करेगा। वह अपने इस इक़रार को किस तरह निभाये ? एक तरफ़ अल्लाह का दीन कहता है कि यह करो और वह करो, दूसरी ओर देश का क़ानून कुछ और कहता है। ऐसी हालत में ज़ाहिर है कि मुसलमान दीन पर पूरी तरह नहीं चल सकता। उसे विवश होकर दीन की कुछ बातें छोड़ना ही पड़ेंगी। आख़िर यह मजबूरी कब तक ? और इस मजबूरी पर राज़ी रहना कैसा ? जिन देशों में मुसलमान ज़्यादा हैं और जो अपने देश के इन्तिज़ाम में आज़ाद हैं, सबसे पहले उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे ज़िन्दगी से दीन और दुनिया के भेद-भाव दूर करें। रहे वे देश, जहाँ मुसलमान कम हैं और वहाँ मुसलमानों के हाथों में कुछ भी नहीं, वहाँ वे कुछ-न-कुछ मजबूर और विवश हैं। बस मजबूरी में उनके करने का काम यह तो नहीं कि वे देश प्रबंध को उलटने की कोशिश करें। दंगा और फ़साद इस्लाम के प्रोग्राम में नहीं परन्तु इस मजबूरी का यह मतलब भी नहीं कि अब कुछ करना ही नहीं है। उनके करने का काम कुछ और है। जो हम आगे बयान करेंगे।

इस्लाम के अरकान

इन्सान की पूरी ज़िन्दगी इबादत बन जाये अल्लाह यही चाहता है। पूरी ज़िन्दगी इबादत बन जाने का मतलब यह है कि इन्सान अल्लाह को खुश करने के लिये जो काम करे, अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ ही करे। इसीलिये इस बात की ज़रूरत है कि इन्सान हरवक्त यह याद रखे कि वह अल्लाह का बन्दा ही है और उसे ज़िन्दगी भर अल्लाह का ही बन्दा बना रहना चाहिये। अपने मालिक (अल्लाह) की पूरी पूरी बन्दगी व ताबेदारी करना चाहिये। इन्सान जितना ज्यादा इस बात को याद रखेगा, उसकी ज़िन्दगी में उतने ही ज्यादा अमले सालेह (अच्छे काम) होते दिखाई देंगे। इस बात को याद कराने और पूरी ज़िन्दगी को अच्छे कामों में ढालने के लिये इस्लाम बना बनाया एक प्रोग्राम देता है। यह प्रोग्राम दीन इस्लाम में इतना ज़रूरी है कि मुसलमान होने के बाद इस्लाम में इसी का दरजा है। सच पूछो तो इसी प्रोग्राम के मुताबिक़ काम करने से ही इस्लाम, इस्लाम है। इस प्रोग्राम के मुताबिक़ काम न हो तो फिर ज़िन्दगी इस्लामी ज़िन्दगी नहीं कही जा सकती। यूं समझिये कि इस्लाम एक इमारत है और इस्लाम की इमारत जिन थमों और सुतूनों पर ठहरी हुई है वे थम इस प्रोग्राम के

भाग (हिस्से) हैं अगर ये सुतून या थम गिरा दिये जायें तो पूरी इमारत ढै जायेगी। इसका मतलब यह हुआ कि जो भी इस प्रोग्राम के मुताबिक़ काम न करेगा तो कहना चाहिये कि उसने इस्लाम को ढा दिया। इसीलिये इस प्रोग्राम के भागों को इस्लाम के अरकान (इस्लाम के थम और सूतून) कहा गया है। यह थम जितने ठोस और मज़बूत होंगे, इस्लामी ज़िन्दगी उतनी ही ठोस और मज़बूत होगी। ये थम जितने ही कमज़ोर होंगे, इस्लामी ज़िन्दगी उतनी ही कमज़ोर होगी। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि "इस्लाम की बुनियाद (नीव) पाँच बातों पर रखी गई है (१) इस बात को गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं और मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं (२) नमाज़ क़ायम करना (३) ज़कात देना (४) हज करना (५) रमज़ान के रोज़े रखना।"

—(बुख़ारी व मुस्लिम)

कभी कभी तो नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने इन्हीं को पूरा इस्लाम फ़रमाया क्योंकि इन को करने से इन्सान की पूरी ज़िन्दगी इस्लाम के साँचे में ढल जाती है।

यही पाँचों इस्लाम के अरकान (सुतून-थम) कहलाते हैं। इन इस्लामी अरकान में से ईमान की गवाही देने के बारे में तो आप इसी किताब के पिछले पन्नों में पूरी बात समझ चुके हैं कि इन्सान पहले सारे झूठे ख़ुदाओं का खंडन करे। हरएक की ताबेदारी और गुलामी से खुलकर इन्कार करे। फिर इसके बाद

यह इक़रार करे कि वह अल्लाह और उस के रसूल का ताबेदार और वफ़ादार है और अब वह ज़िन्दगी के सारे काम अल्लाह और उसके रसूल के हुक्मो के मुताबिक़ करेगा और अल्लाह के सिवा किसी और को पज्य न बनायेगा।

नमाज़

ईमान के बाद इस्लाम का सबसे बड़ा फ़र्ज़ नमाज़ है। मुसलमान के लिए अल्लाह का कोई हुक्म नमाज़ से बढ़कर नहीं नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम के ज़माने में नमाज़ मुसलमान की पहचान थी। अगर कोई नमाज़ नहीं पढ़ता था तो हुज़ूर के सहाबी (साथी) उसे मुसलमान नहीं समझते थे। क़ुरआन में भी नमाज़ की बड़ी ताकीद है। सूरः रूम में तो साफ़-साफ़ यह है कि

وَأَقِيمُوا الصَّلٰوةَ وَلَا تَكُونُوا مِنَ الْمُشْرِكِينَ.

(سورۃ الروم آیت ۳۱)

नमाज़ क़ायम करो और मुश्रिकों में से मत हो जाओ।"
(अर्रूम — ३१)

इसी से मिलती जुलती बात नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फ़रमाई है। आपने फरमाया कि "बन्दे और कुफ़्र में बस नमाज़ छोड़ देने की दूरी है।"

क़ुरआन और हदीस के इन दोनों आदेशों का मतलब इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि नमाज़ छोड़ देना मुसलमान का काम नहीं है। जो मुसलमान नमाज़ छोड़ देगा वह कुफ़्र के

पास पहुंच जायेगा और इस्लाम से दूर हो जाएगा। कुछ नहीं कहा जा सकता कि फिर कब वह इस्लाम से कट जाये और कुफ़्र से जा मिले या मुश्रिक हो जाये।

नमाज़ इस्लाम की पहचान है, नमाज इस्लाम का सबसे बड़ा हुक्म है, नमाज़ इस्लाम का सबसे बड़ा रूक्न (थम, सुतून) है। जिसने नमाज़ छोड़ दी, उसने इस्लाम की इमारत को ढा दिया। नमाज़ के बिना इस्लामी ज़िन्दगी हो ही नहीं सकती। नमाज़ छोड़ देने से इस्लामी ज़िन्दगी गुज़ारी ही नहीं जा सकती। क़ियामत के दिन अल्लाह तआला के सामने जब हम सब के कर्मों की जाँच होगी तो सबसे पहले नमाज़ की जाँच होगी कि बन्दा नमाज पढ़ता था या नह। जो लोग परीक्षा (इम्तिहान) के इस परचे में पास हो जायेंगे, उन्हीं के बारे में आशा की जायेगी कि वे अपने दूसरे कर्मों की जाँच में सफल होंगे। जो नमाज़ही से कोरे होंगे वे सारे ही कर्मों में फ़ेल समझे जायेंगे। नमाज़ के बिना क़ियामत के दिन यह आशा लगाना कि अल्लाह हमारी भूल-चूक या हमारेपापों को क्षमा (माफ़) कर देगा, बिल्कुल ग़लत है। नमाज़ के बिना यह आस लगाना कि जन्नत मिलेगी ही, ठीक नहीं है। नमाज़ के बिना इस दुनिया में इज़्ज़त भी चाहना बेकार ही है।

क़ियामत के दिन सारे इन्सान दो जत्थों में बट जायेंगे। एक जत्थे में वे लोग होंगे जो अल्लाह को मानने वाले और उसके हुक्मों पर चलनेवाले होंगे। दूसरा जत्था उन लोगों का होगा जो अल्लाह को न माननेवालेऔर शैतानों के साथी होंगे। क़िया-मत के दिन अल्लाह तआला अपने वफ़ादार बन्दों पर अपनी रह-

मत की वर्षा करेगा और उनको ऐसे सदाबहार बाग़ में रखेगा, जहाँ सदा के लिए सुख ही सुख होगा। जो लोग अल्लाह के बाग़ी होंगे वे क़ियामत के दिन बड़े घाटे में रहेंगे । उन पर फिटकार बरस रही होगी। वे अल्लाह की रहमत से दूर होंगे । उनको अल्लाह ऐसे अज़ाब की जगह रखेगा जिसका नाम जहन्नम है और वे लोग उस जहन्नम में सदा के लिए दुःख ही दुःख सहेंगे। सोचने की बात है जो आदमी अल्लाह का मानने वाला है और जो क़ियामत के दिन पर पूरा-पूरा यक़ीन और विश्वास रखता है, वह इन दोनों जत्था में से किस जत्थे में होना पसन्द करेगा। जो शख़्स अपने को मुसलमान कहता है, वह यह पसन्द ही नहीं कर सकता कि क़ियामत के दिन उसे अल्लाह की रहमत से दूर फेंक दिया जाए और वहाँ सदा के लिए उसकी रुसवाई हो और वह उस जत्थे में खड़ा किया जाये जिसे अल्लाह सदा के लिए अज़ाब देगा।

क़ियामत में ये दोनों जत्थे नमाज़ी और बे नमाज़ी होने पर अलग-अलग किए जायेंगे। क़ुरआन मजीद की सूरः अलक़लम में है कि जब सारे इन्सान हश्र के मैदान में इकट्ठा होंगे तो वह बड़ी मुसीबत का समय होगा। उस समय लोगों को सजदे का हुक्म दिया जाएगा। नमाज़ पढ़नेवाले हुक्म पाते ही सजदे में चले जायेंगे लेकिन जो लोग नमाज़ी न होंगे और दुनिया की ज़िन्दगी में अज़ान सुनकर यूं ही टाल देते थे, जब कि वे हट्टे-कट्टे थे और उनको कोई मजबूरी नहीं थी। वे यूं ही खड़े रह जायेंगे। उनकी पीठें अकड़ कर तख़्ता हो जायेंगी और वे सजदा कर ही न सकेंगे। ज़रा सोचिये, उस वक्त की हालत भी कैसी

अनोखी होगी। एक ओर तो अल्लाह के सच्चे बन्दे सजदे में पड़े होंगे और अल्लाह उनका मर्तबा बढ़ा रहा होगा। दूसरी ओर अल्लाह के बाग़ी और उसका हुक्म न मानने वाले मुज़रिमों की तरह आँखें नीची किये परेशान खड़े होंगे। उनकी करतूतों का फल उनके सामने होगा। जहन्नम उनको बुला रही होगी। अल्लाह तआला हमें उस दिन की रुसवाई से बचाये। उस दिन की बेइ-ज्ज़ती सचमुच सबसे बड़ी बेइज्ज़ती है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया, इससे उन लोगों के लिए बड़ी नसीहत है, जो अल्लाह ही को अपना मालिक और पूज्य मानते हैं, आख़िरत पर यक़ीन और विश्वास रखते हैं और आख़िरत की कामयाबी ही को सच्ची कामयाबी समझते हैं। ऐसे लोग जो अज़ान सुनकर नमाज़ के लिए नहीं उठते और इस्लाम के इस सबसे बड़े हुक्म और फ़र्ज़ को यूं ही टालते रहते हैं, वे सोचें कि वे कितनी बड़ी नादानी में हैं। क्या सचमुच मुसलमान होने के बाद उनके लिए नमाज़ की छूट है ? क्या मुसलमान होने के बाद नमाज़ छोड़ने की हिम्मत कोई कर सकता है ? क्या मुसलमान होने के बाद कोई ऐसा अलग-थलग रह सकता है कि वह इन बातों पर कुछ ध्यान ही न दे ? सच्ची बात तो यह है कि नमाज़ से जी चुराना ईमान के कमज़ोर होने की खुली निशानी है। नमाज़ की पाबंदी कराने के लिए सबसे पहले ईमान को मज़बूत और ठीक कराना चाहिए। जो अल्लाह को माननेवाला और उसकी नाराज़ी से डरनेवाला होगा वह तो यह सोचते ही काँपने लगेगा कि जान बूझकर किसी वक़्त की नमाज़ खो दे और अल्लाह के इतने बड़े हुक्म को टाल दे। जो लोग नमाज़ से बेपर-

वाह हैं, सच पूछो तो उनके दिल में अल्लाह का डर है ही नहीं।

इस्लाम में नमाज़ को इतना ऊँचा स्थान क्यों दिया गया ? यह बात आसानी से समझीजा सकती है। अगर आप यह समझ लें कि इस्लामी इबादत और दूसरे धर्मों की पूजा-पाठ में क्या अन्तर (फ़र्क़) है ?

दूसरे धर्मों में कुछ लोग तो यह समझते हैं कि शायद ख़ुदा भी राजों, महाराजों, नवाबों या बादशाहों की भाँति है कि जो ख़ुशामद चापलूसी और तारीफ़ से ख़ुश होता है। ये लोग ख़ुदा की पूजा कुछ इसी प्रकार करते हैं। कुछ लोग यूँ सोचते हैं कि दुनिया की ज़िन्दगी जान का जंजाल है और इन्सान को ख़ुदा से दूर करने वाली है। ये लोग कहते हैं कि इन्सान की आख़िरी चाह ख़ुदा से मिल जाना है और इस चाह को पूरा करने के लिए इन्सान को चाहिए कि दुनिया के धन्धों को छोड़कर बस ख़ुदा ही की बन्दगी में लग जाना चाहिये।

इस्लाम इन दोनों बातों को ग़लत बताता है। इस्लाम तो यह सिखाता है कि पूरी ज़िन्दगी को अल्लाह की ताबेदारी के साँचे में ढालना और दुनिया के हर काम को ख़ुदा की मरज़ी के मुताबिक़ उसी के ख़ुशी के लिए करना अस्ल इबादत है। यह इबादत कुछ आसान काम नहीं। यह कुछ मिनट या घन्टों का पूजा-पाठ नहीं है कि इन्सान किसी न किसी तरह इसके लिए कुछ वक़्त निकाल कर उसे कर डाले और बस फिर चाहे कुछ करता फिरे। नहीं, यह पूरी ज़िन्दगी का मामला है। हर घड़ी ख़ुदा ही की इबादत में गुज़रना ही चाहिए। इस कठिन काम

को आसान करने के लिए अल्लाह तआला ने नमाज़, ज़कात, रोज़ा और हज के हुक्म दिए हैं। नमाज इन सब में सब से ज्यादा ज़रूरी और बड़े काम की है। नमाज़ इन्सान को हर वक्त अल्लाह की ताबेदारी की याद दिलाने वाली हैं।

नमाज़ किस तरह इन्सान की पूरी ज़िन्दगी को अल्लाह की ताबोदरी की ओर ले जाती है, यह समझना कुछ भी कठिन नहीं है। सोचिये, एक इन्सान अल्लाह को अपना मालिक और हाकिम मानते हुए उसके हुक्मों को क्यों टाल जाता है ? इसके कई कारण हैं :—

(१) इन्सान अक्सर भूल जाता है।

(२) वह बेपरवाह है।

(३) हर काम के लिये उसे सधाने और सिखाने की ज़रूरत है।

(४) उमंगों में आकर अपने बस में नहीं रहता।

ये सारे काम नमाज़ की मदद से बहुत अच्छी तरह हो सकते हैं। सच्ची बात यह है कि इन कामों के लिए नमाज़ से बड़ा दूसरा उपाय नहीं। नमाज़ में इन्सान बार बार इस बात का इक़रार करता है कि वह केवल अल्लाह का बन्दा और दास है। अल्लाह ही की बन्दगी करना उसका काम है। अल्लाह की बड़ाई के सामने वह किसी की बड़ाई को नहीं मानता। अल्लाह ही उस का मालिक और स्वामी है। अल्लाह ही उसका हाकिम है। उसे अपनी पूरी ज़िन्दगी का हिसाब अल्लाह को देना है। वह पूरी ज़िन्दगी में उसी रास्ते पर चलेगा, जो अल्लाह ने और उसके रसूल ने बताया है। ये और इसी तरह की दूसरी बातें वह नमाज़ में पाँच वक़्त बार-बार दुहराता है और अपने ईमान

को ताज़ा करता है। इसके बाद यह डर नहीं रहता कि भूल के कारण किसी ऐसे रास्ते पर चल पड़ेगा जो ठीक न हो। फिर नमाज़ की पुकार (अज़ान) सुनते ही अल्लाह के दरबार की ओर बार-बार दौड़ने से उसकी बेपरवाही और सुस्ती की आदत दूर होती है। वह अपनी ज़िम्मेदारी को पहचानता है। अपनी चाह और अपनी पसन्द के मुक़ाबिले में अल्लाह के हुक्मों पर चलने की आदत पड़ती है। उससे यह उम्मीद की जा सकती है कि वक़्त आने पर वह एक अच्छे सिपाही की तरह बड़े से बड़े काम के लिये तैयार हो जायेगा। वह अपने दिल को अपने बस में रखने की कोशिश करता है। अपनी मनो कामनाओं को दबाता है। अल्लाह को बार-बार याद करने, उसके सामने खड़े होने, उसके आगे बार-बार झुकने, उसे सजदा करने और उसके गुणों को याद करने से इंसान के दिल में अल्लाह का प्रेम और उसका डर पैदा होता और बढ़ता है। इसके बाद इन्सान में यह बात पैदा हो सकती है कि अल्लाह के हुक्मों को सुनकर बड़े शौक़ और लगन के साथ उन्हें करने लगे। अल्लाह के हुक्मों को न मानने से इस तरह डरे कि जिस तरह कोई आग से डरता है। आप ख़ुद ही समझ सकते हैं कि जब तक ये सारी बातें किसी में पैदा न हो जायें, वह इस्लाम के लिये काम का आदमी नहीं बन सकता। नमाज़ इस काम के लिये सब से अच्छा ज़रिया (साधन) है इसी लिये इस्लाम के अरकान में नमाज़ का इतना बड़ा स्थान है और इसी लिये नमाज़ के बिना कोई इन्सान इस्लाम की राह में मज़बूती से जम नहीं सकता है। एक बार नबी सल्लल्लाहुअलैहिवसल्लम ने फ़रमाया कि अरब के देहात

में रहने वालों (बद्दुओं) से जो हमारा लगाव है वह नमाज़ ही से है। जो नमाज़ छोड़ देगा, वह काफ़िर हो जायेगा। उसका सम्बन्ध हम से छूट जायेगा।

यह पढ़कर आप यह भी कह सकते हैं कि क्या सारे नमाज़ियों की ज़िन्दगियाँ ठीक-ठीक इस्लामी ज़िन्दगी बन जाती हैं ? हम देखते हैं कि ऐसा नहीं है। बहुत से नमाज़ पढ़ने वाले अल्लाह के पूरे पूरे ताबेदार नहीं होते बल्कि वे अल्लाह की ताबेदारीं के बदले दूसरों को ग़ुलामी और ताबेदारी में लगे हुये हैं। ऐसा क्यों है ? यह बात भी समझ लीज़िये। इसके बड़े-बड़े कारण दो हैं।

पहला कारण तो यह है कि आप जिस स्थान पर रहते बसते हैं, और जहां तक आपकी पहुंच होती है, वह इस्लामी नहीं है। आप जिस हुकूमत में रह रहे हैं उसका सम्बन्ध खुदा और उसकी ताबेदारी से नहीं है और अगर कहीं है भी तो बस नाम का। ऐसे स्थान और ऐसी हुकूमत में किसी इन्सान का पूरे तौर पर अल्लाह की ताबेदारी करना कठिन है। ज़िन्दगी के हर काम में उसके हुक्मों पर चला ही नहीं जा सकता। आप नमाज़ में इक़रार करतें हैं कि ऐ अल्लाह ! हम तेरी ही बन्दगी करेंगे लेकिन नमाज़ के बाद आप अपना सिर अल्लाह के सिवा दूसरों के आगे झुकाते हैं। नमाज़ में आप खुदा से बिनती करते हैं कि वह आपको अपनी पसन्द के रास्ते पर चलाये लेकिन नमाज़ के बाद आप जिस रास्ते पर चलते हैं वह अल्लाह के सिवा दूसरों की पसन्द-का रास्ता होता है, जो सीधा होने के बदले बिल्कुल टेढ़ा होता है। इन टेढ़े रास्तों पर चलने के लिये

कहीं तो आप बेबस होते हैं और कहीं अपनी खुशी से दूसरों की देखा-देखी आप उन रास्तों पर चल पड़ते हैं। कभी ऐसा होता है कि दूसरे लोग आपको अल्लाह के हुक्मों पर चलने नहीं देते और कभी तो आप अपने आप ही अल्लाह के हुक्मों पर चलने की कोशिश नहीं करते।

इस्लाम पूरी ज़िन्दगी के लिये क़ानून देता है। इस क़ानून की बरकत उसी वक़्त सामने आती है और आ सकती है, जब ज़िन्दगी के सारे काम इसी क़ानून के मुताबिक़ हों। जिस ज़िन्दगी में बस इस्लाम का लेबिल ही लगा लिया गया हो, वहाँ इस्लामी क़ानून का असर नहीं देखा जा सकता। वह क़ानून जिसकी बुनियाद खुदा, आख़िरत और खुदा की हिदायत पर न हो, वहाँ किसी तरह की उम्मीद नहीं की जा सकती।

इस्लामी ज़िन्दगी का पूरा नमूना वहीं देखा जा सकता है जहाँ लोग इस्लाम के मानने वाले हों और वहाँ इस्लामी क़ानून भी लागू हो। अल्लाह को खुश करने के लिए इसी की ज़रूरत है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जबतक सारे ही लोग इस्लाम के मानने वाले न हों और इस्लामी क़ानून लागू न हो, हमारी ज़िन्दगियाँ इस्लामी ज़िन्दगी नहीं बन सकतीं। ऐसे वक़्त में इस्लामी ज़िन्दगी की पहचान कुछ और होती है। ऐसे समय में अल्लाह को खुश करने और उसके अज़ाब से बचने के लिए दो बातें ज़रूरी होती हैं और यही इस्लामी ज़िन्दगी की पहचान हैं।

(१) जहाँ तक हो सके, अपने सारे कामों में सिर्फ़ अल्लाह के हुक्मों और उसके क़ानून पर चला जाए। हम जो काम करने

चलें, रसूले पाक और उनके प्यारे साथियों (सहाबा) के हालात को सामने रखें और अपने बस भर हर काम में उन्हीं की पैरवी करें।

(२) जो लोग अल्लाह के बाग़ी हैं उनकी चाल-ढाल और उनके रंग-ढंग के बारे में साफ़-साफ़ कह दिया जाए कि हमें पसन्द नहीं। किसी ऐसे प्रोग्राम में शरीक न हुआ जाये जो ख़ुदा से बेपरवाह होकर बनाया गया हो और जो उसके रसूल के बताये हुए तरीक़े के ख़िलाफ़ पड़ता हो। साथ ही यह कोशिश करना चहिए कि लोग अल्लाह के बाग़ी बनकर न रहें। अल्लाह के बन्दे अल्लाह की बन्दगी करने लगें और उसी के भेजे हुए क़ानून पर चलकर अपनी ज़िन्दगियों को अकारत होने से बचायें। इस काम को पूरा ज़ोर लगाकर किया जाए और सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी और आख़िरत की कामयाबी के लिए अपना सब कुछ इसी काम के लिए लगा दिया जाए।

दूसरा कारण यह है कि हमारी नमाज़ें वैसी नमाज़ें नहीं होतीं, जैसी होना चाहिये। नमाज़ से जो बरकतें मिलना चाहिये वे उसी वक़्त मिल सकती हैं, जब नमाज़ इस तरह अदा की जाये, जिस तरह अदा करना चाहिए। नमाज़ के दो रूप हैं। एक वह जो नमाज़ पढ़ते समय देखा जा सकता है। नमाज़ के लिए खड़ा होना, रुकू करना, सजदा करना और ऐसी ही दूसरी बातें जिन्हें देखकर ही समझ लेते हैं कि नमाज़ पढ़ी जा रही है। नमाज़ का दूसरा रूप वह है जो नमाज़ी की आत्मा (रूह) के बारे में है। नमाज़ में जिस तरह नमाज़ी का जिस्म अल्लाह के लिये झुकता है, इसी तरह बल्कि उससे ज़्यादा आत्मा को झुकाना

चाहिए। आत्मा के झुकाव के बिना नमाज़ पढ़ने का हक़ अदा नहीं होता। नमाज़ में आत्माका झुकाव जितना ज़्यादा होगा, नमाज़ उतनी ही अच्छी होगी और उसी नमाज़ का असर ज़िन्दगी के कामों पर पड़ेगा।

ऐसी नमाज पढ़ने के लिये नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) यह ध्यान में रहे कि बन्दा अपने मालिक के आगे खड़ा है और मालिक को देख रहा है। अगर इतना न हो सके तो फिर कम से कम यह तो ध्यान में रहे कि मालिक उसे ज़रूर देख रहा है।

(२) अल्लाह के बारे में यह बात ध्यान में रखना कि वह अपरम्पार बड़ाईवाला है और उसके सामने अपने को बहुत ही छोटा और कमज़ोर समझे।

(३) पूरे प्रेम और बड़े शौक़ के साथ अल्लाह तआला की तरफ़ पूरा-पूरा ध्यान रखना।

इन्हीं बातों से नमाज़ अच्छी और अच्छी से अच्छी हो सकती है। हम में से हर शख्स की यही कोशिश होनी चाहिए कि हम में ये बातें ज़्यादा से ज़्यादा पैदा हों। अपने अन्दर ये बातें पैदा करने के लिए ध्यान देना और कोशिश करना ज़रूरी है। सबसे पहले आप यहफ़ैसला करें कि अपनी नमाज़ों को अच्छी और उत्तम बनाने को कोशिश करेंगे। फिर नमाज़ का मतलब अच्छी तरह समझ लें और उसे याद कर लें। जब आप नमाज़ पढ़ते हों तो आपको यह मालूम हो कि आप क्या कह रहे हैं ? नमाज़ सोच-समझ कर पढ़ें। जो कुछ पढ़ें, उस पर ध्यान दें। नमाज़ में रुकू

सजदा आदि करते समय यह विचार करते जायें कि इस वक़्त हम सारे संसार के मालिक के सामने हाज़िर हैं। हम उस मालिक के सामने हाथ बाँधे खड़े हैं। हम उस मालिक के आगे झुक रहे हैं। सजदा करें तो यह सोचते हुए कि हमने अपने आपको अपने मालिक के आगे डाल दिया है और हम पूरे के पूरे उस स्वामी के ही बन्दे और दास हैं। और वही हमारा सच्चा स्वामी है। वही हमारा हाकिम है और उसके एहसान हम पर इतने हैं कि हम सोच भी नहीं सकते।

बे सोचे-समझे और मतलब जाने विना नमाज़ पढ़ने से कुछ हाथ नहीं आता। जल्दी या घबड़ाहट में बे सोचे-समझे जो नमाज़ पढ़ी जाती है, वह उत्तम और सच्ची नमाज नहीं बल्कि देखने में नाम की नमाज़ है। हज़रत इमाम हसन बसरी रहमतुल्लाह अलैहि ने फ़रमाया कि जो नमाज़ मन लगाकर न पढ़ी जाए और इन्सान बे सोचे-समझे हो अदा करे तो यह डर है कि वह सवाब के बदले अज़ाब पाये। जिस नमाज़ में मन न लगा हो। उसके सबाब की उम्मीद अल्लाह से कैसे की जा सकती है? आप सारे संसार के हाकिम के सामने खड़े हों इसलिये खड़े हों कि उससे कुछनिवेदन करें पर आपका मन कहीं और लगा हो। आपके मुंह से जो बोल निकल रहे हों, बे सोचे-समझे ही निकल रहे हों तो आप ही समझिये कि यह हरकत तो ठीक नहीं बल्कि सरासर गुस्ताख़ी है। अगर इन्सान को यह ध्यान रहे कि वह किसके साथ बे सोचे-समझे बातें कर रहा है और किस के सामने बेदिली से झुक रहा है तो वह सचमुच काँप उठेगा। नमाज़ में बेपरवाही इसी वक्त पैदा होती है, जब अल्लाह के सामने अपनी हाज़िरी

और उसके बारे में यह भुलावा हो जाता है कि वह सब जानने वाला और देखनेवाला है। नमाज़ ठीक-ठीक अदा करने के लिए बेध्यानी और बेपरवाही को ज़रूर दूर करना चाहिए।

नमाज़ में यह बात कैसे पैदा हो ? इसके लिये सबसे पहले तो ख़ुद आपको पक्का इरादा कर लेने की ज़रूरत है। फिर यह भी ज़रूरी है कि आपको उन सारी दुआओं का मतलब याद हो, जो आप नमाज़ में पढ़ते हैं। इसके बाद आपकी तरफ़ से पूरी कोशिश होनी चाहिये। यह कोशिश किस तरह हो ? इस बारे में कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं। अगर अल्लाह से मदद माँगते हुये उन पर अमल किया जायेगा तो उम्मीद है कि इन्शाअल्लाह ज़रूर फ़ायदा होगा।

नमाज़ का वक्त आने से पहले ही नमाज़ का ध्यान रखिये। बिल्कुल उसी तरह जैसे आप सफ़र पर जाने से घन्टों पहले गाड़ी के वक्त और सफ़र में साथ ले जाने वाले सामान के बारे में कुछ न कुछ बराबर सोचते रहते हैं। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है कि :—

"तुम जितनी देर नमाज़ का इन्तिज़ार करते हो उतनी देर नमाज़ ही में होते हो।"

(बुख़ारी व मुस्लिम)

अज़ान

जब नमाज़ का वक्त आ जाये और आप अज़ान की आवाज़ सुनें तो पूरे ध्यान के साथ अज़ान के शब्दों को दुहरायें। मुअज़्ज़िन (अज़ान के बोल पुकारने वाले) के साथ-साथ आप भी एक-एक बोल सोच समझ कर दुहराते जायें। जब आप "अल्लाहु अकबर" सुनें तो इसका मतलब मन में बिठायें कि अल्लाह सब से बड़ा है। आप यह मतलब मन में बिठाकर अल्लाह की बड़ाई पर ध्यान दें। अपने दिल को टटोलें कि उसमें कहीं किसी और की बड़ाई का बीज तो नहीं पड़ा है। अगर ऐसा हो तो उस बीज को निकाल फेंकिये। इसी तरह "अश्हदु अल्लाइलाहा इल्लल्लाह (मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं) सुनकर और अपनी ज़बान से दुहरा कर यह बात याद रखने की कोशिश कीजिये कि अब अल्लाह के सिवा न तो किसी की बन्दगी करनी है और न किसी और की ताबेदारी ही।

इसके बाद ही अज़ान के ये बोल कि "अश्हदुअन्न मुहम्मद-रसूलुल्लाह" (मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि-वसल्लम अल्लाह के रसूल हैं) सुनकर और अपनी ज़बान से भी कहकर यह बात मन में बिठाइये कि जब मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम अल्लाह के रसूल हैं तो अल्लाह की इबादत और ताबेदारी आप ही के बताये हुये तरीक़े पर करनी चाहिये।

इसके बाद "हय्य अलस्सलाह" (नमाज़ की तरफ़ आओ) और "हय्य अलल्फ़लाह" (कामयाबी की तरफ़ आओ) सुनकर

"लाहौलावला क़ूवता इल्ला बिल्लाह" (अल्लाह की मदद के बिना न कोई शक्ति है और न ताक़त) कहते हुये यह सोचिये कि यह मुअज्ज़िन जिस बड़े काम और जिस ऊँची इबादत के लिये बुला रहा है, उसको ठीक-ठीक कर ले जाना और उससे पूरा-पूरा फ़ायदा उसी वक्त उठाया जा सकता है जब अल्लाह हमारी मदद करे अल्लाह की मदद के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता।

फिर जब आख़िर में मुअज्ज़िन के साथ आप कहें कि "लाइलाहा इल्लल्लाह" (अल्लाह के सिवा कोई और बन्दगी के लायक़ नहीं) तो अपने दिल को टटोलें कि उसमें अल्लाह ही की बन्दगी की उमंग है ? किसी और की बन्दगी व ताबेदारी की गन्दगी तो उसमें नहीं शामिल है ?

अज़ान सुन चुकें तो आप अपने ईमान को ताज़ा करने के लिये फिर "अश्हदु अल्लाइलाहा इल्लल्लाहु व अश्हदुअन्न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह" पढ़लें और सोच समझकर यह भी कहें कि "रज़ीतुबिल्लाहि रब्बौं व बिमुहम्मदिर्रसूलौं व बिल-इस्लामि दीना" मैं इस पर राजी और खुश हूँ कि मैंने अल्लाह को अपना रब (मालिक) और मुहम्मद को रसूल और इस्लाम को अपना दीन बना लिया।)

वुज़ू

इस तरह अज़ान सुनकर आप जब ईमान के बारे में सारी बातें ध्यान में रख लें तो दुनिया के धन्धों को छोड़कर अल्लाह के दरबार में जाने की तय्यारी करें। अब आप मन को अल्लाह की ओर लगाकर ठीक-ठीक वुज़ू करें। अच्छी तरह से वज़ू करें। अच्छी तरह से वुज़ू करना नमाज़ को क़ायम करने का एक बड़ा हिस्सा है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि :—

पाँच नमाज़ें हैं, जिनको अल्लाह ने फ़र्ज़ किया है। जो इनके लिये ठीक-ठीक वुज़ू करे और उनको ठीक-ठीक अदा करे। ठीक से रुकू करे, ठीक से सजदा करे और अल्लाह के आगे गिड़गिड़ाता रहे तो उसके लिये अल्लाह ने यह बात अपने ज़िम्मे ली है कि उसके गुनाहों को माफ़ कर देगा। और जो इस तरह नमाज़ न पढ़ेगा तो अल्लाह के ज़िम्मे कोई बात नहीं है अगर चाहे तो बख़्श दे और चाहे तो अज़ाब दे।" (अबू दाऊद, मालिक आदि) ठीक-ठीक वुज़ू करने का मतलब यह भी है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने वुज़ू करने का जो तरीक़ा बताया है और जो शरीअत की किताबों में पाया जाता है, उसके मुताबिक़ करे। और यह समझकर करे कि अब मुझे अपने असली मालिक के आगे जाना है। वुज़ू का मतलब बस हाथ मुंह धो लेना ही नहीं है बल्कि उसका मतलब यह है कि तन और मन दोनों को गन्दगी से पाक करके उस मालिक के सामने जाकर उससे बातें करनी हैं जो पाक और बेऐब है। अगर आप

यह सब याद रखेंगे तो वुज़ू करने के समय ही से आपमें तौबा करने और गिड़गिड़ाने की उमंग उठने लगेगी। आप एक-एक अंग धोते जायेंगे और तन को साफ़ करने के साथ मन को भी पाक करते जायेंगे। यही वह वुज़ू है जिसके बारे में नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फ़रमाया है कि :—

"जब मुसलमान वज़ू करता है और अपना मुंह धोता है तो उसके चेहरे के वे सारे गुनाह पानी के साथ निकल जाते हैं जो उसने आँख से किये थे। फिर जब वह हाथ धोता है तो दोनों हाथों के सारे गुनाह पानी के साथ निकल जाते हैं और जब वह पाँव धोता है तो दोनों पैरों के सारे गुनाह पानी के साथ निकल जाते हैं। और वह गुनाहों से पाक हो जाता है। (मुस्लिम)

ऐसा वुज़ू करना हो तो नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम के हुक्मों के मुताबिक़ 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' पढ़कर वुज़ू करना शुरू करें। वुज़ू करते समय बेकार बातें न करें बलकि मन को अल्लाह की ओर लगायें। जब वुज़ू कर चुकें तो शहादत का कलमा पढ़ें, अश्हदुअल्लाहइलाहा इल्लल्लाहु व अश्हदुअन्न मुहम्मदन अब्दुहू वरसूलुह (मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं।

कलमा शहादत के साथ ही ये बोल भी कहें :—

"अल्लाहुम्मजअलनी मिनत्तव्वाबीना वजअलनी मिनल-मुतातहहिरीन।" (ऐ अल्लाह ! तू मुझे बार बार तौबा करने वालों और पवित्रता अख़्तियार करनेवालों में से बना।

मस्जिद की ओर

वुज़ू करने के बाद भलेमानुसों की तरह सीधे मस्जिद जायें। घर से निकलते समय आपका मन अल्लाह की याद और नमाज़ में लगा रहे। घर से निकलते समय मन में नमाज़ के सिवा और कुछ न हो। नबी स० ने फ़रमाया कि "घर और बाज़ार में नमाज़ पढ़ने के मुक़ाबिले में जमाअत से नमाज़ पढ़ना पच्चीस गुना ज़्यादा अच्छा है और यह जमाअत से नमाज़ पढ़ना इस तरह हो कि जब उसने वुज़ू किया और अच्छा वुज़ू किया फिर वह मस्जिद की तरफ़ चला और नमाज़ ही के लिये चला तो जो क़दम भी वह उठायेगा, उससे उसका एक मर्तबा (पद) ऊँचा होगा और उसका एक गुनाह माफ़ होगा और जब वह नमाज़ पढ़ेगा तो जब तक वह मस्जिद में रहेगा, फ़रिश्ते उसके लिए यह दुआयें करते रहेंगे कि ऐ अल्लाह! इस पर रहमतें उतार, ऐ अल्लाह ! इस पर रहम फ़रमा।" (बुख़ारी व मुस्लिम)

मस्जिद में अदब के साथ जाइये। यह सोचते हुये जाइये कि सारे बादशाहों के बादशाह और सारे संसार पर हुकूमत करने वाले के दरबार में जा रहे हैं। मस्जिद में जाते समय पहले दाहिना पाँव अन्दर रखिये और सोच समझ कर यह दुआ पढ़िये "अल्लाहुम्मफ़तहली अबवाबा रह्मतिक।" (ऐ अल्लाह ! मेरे लिए अपनी रहमत के दरवाज़े खोल दे)।

दुआ के ये बोल याद न हों तो उसका मतलब ही मन ही मन में कह लीजिये। नमाज़ से पहले जितनी देर मस्जिद में लगे, उससे उकताइये नहीं बल्कि यक़ीन रखिये कि आप अल्लाह

के दरबार में हाज़िर हैं। और इस समय आप सबसे बड़े बाद-शाह के दरबारी हैं। इस बड़े दरबार में दुनिया की बातें न कीजिये। नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया—

"लोगों पर एक समय ऐसा आयेगा जब वे अपनी मस्जिदों में अपने दुनिया के कामों के बारे में बातें करेंगे। तो उनके पास न बैठो क्योंकि अल्लाह को ऐसे लोगों से कोई लगाव नहीं। (बैहक़ी)

तो मस्जिद में जो समय बीते वह अल्लाह को याद करने में बीते। ख़ाली समय में या तो आप नफ़िल नमाज़े पढ़िये। इस नमाज़ की सन्नत रकअतें घर पर न पढ़ी हों तो उन्हें पढ़िये और अगर वे पढ़ चुके हों तो 'तहीयतुल मस्जिद' की दो रकअतें अदा कीजिये। हुज़ूर ने फ़रमाया "जब तुम में से कोई मस्जिद में आये तो बैठने से पहले दो रकअत नमाज़ पढ़ले।"

या क़ुरआन पाक की तिलावत करे या अदब के साथ एक तरफ़ बैठकर चुपके से कोई दुआ बार-बार पढ़ता रहे। नबी स० ने फ़रमाया कि "जब तुम जन्नत के बागों में चल रहे हो तो ख़ूब चरो।" सहाबा ने पूछा—"जन्नत के बाग़ कौन से हैं ?" फ़रमाया "मस्जिदें।" सहावा ने पूछा और "चरना क्या?" फ़रमाया "सुबहानल्लाहि वल्लहम्दु लिल्लाहि वला इलाहा इल्ल-ल्लाह" और "अल्लाहु अकबर" (तिरमिज़ी)

ये बोल सोच समझ कर सम्भाल-सम्भाल कर कहते रहिये। जिस नमाज़ से पहले अल्लाह की याद दिल में न हो, उस नमाज़ में दिल बहुत मुश्किल से लगेगा। नमाज़ से पहले नमाज़ की तय्यारी बहुत ज़रूरी है। नमाज़ से पहले काबे की तरफ़ मुंह

करके खड़े हो जाइये और अक़ामत की तकबीर[1] को ध्यान से सुनिये और सोच समझ कर उसका जवाब दीजिये। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम तकबीर के बोल दुहराते थे जब हज़रत बिलाल (जो अज़ान व तकबीर कहा करते थे) अक़ामत की तकबीर में यह कहते कि 'क़दक़ामतिस्सलाह' तो नबी स० 'अक़ामहल्लाहु व अदामहा' कहते (यानी अल्लाह उसे क़ायम रखे और हमेशा रखे) बाक़ी अक़ामत में वही बोल दुहराते जो बिलाल रजि० कहते।

फिर तकबीर तहरीमा[2] से पहले या बाद में सोच समझ कर पढ़िये—

"इन्नीवज्जहतु वजहिया लिल्लज़ी फ़तरस्समावाति वलअर्ज़ि हनीफ़ौं व माअना मिनल मुश्रिकीन ! इन्न सलाती व नुसुकी व महयाया व ममाती लिल्लाहि रब्बिल आलमीना ला शरीका लहु व बिज़ालिका उमिर्तु व अना मिनल मुस्लिमीन।" (मैंने अपने आपको हर तरफ़ से काट कर अपने चेहरे को उसकी ओर फेर दिया है जिसने आसमानों और ज़मीन को बनाया और मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो ख़ुदाई में किसी को अल्लाह का शरीक ठहराते हैं। मेरी नमाज़, मेरी क़ुर्बानी, मेरी ज़िन्दगी और मेरी मौत सिर्फ़ उस अल्लाह के लिए है जो सारे ही संसार का मालिक है। उसका कोई शरीक नहीं। मुझे इसी बात का

---

१. जमाअत खड़ी होते समय जो तकबीर कही जाती है वह अक़ामत की तकबीर कहलाती है।

२. नमाज़ पढ़ने में नीयत करके सबसे पहले जो "अल्लाहु अकबर" कहते हैं उसका नाम तकबीर तहरीमा है।

हुक्म दिया गया है और मैं उसके हुक्मों को मानने वाला हूँ।)

इन बोलों में जो कुछ आपने कहा यही नमाज़ की असल और उसका जौहर है ; सच पूछो तो मुसलमान की ज़िन्दगी की जान यही है। इस ध्यान ज्ञान के साथ जो नमाज़ पढ़ी जायेगी उम्मीद है कि उसमें मन लगेगा और ऐसी ही नमाज़ मोमिन के दर्जे ऊंचे करती है।

आपने तकबीर तहरीमा (अल्लाहु अकबर) कहते हुए हाथ कानों तक उठाये। यूं कहिये कि आपने दुनिया और उसके सारे धन्धों से हाथ उठा लिए और अब अदब के साथ हाथ बांध कर अपने सच्चे मालिक के सामने खड़े हो गये। नमाज़ अल्लाहु अकबर से शुरू होती है। नमाज़ में अल्लाहु अकबर बार-बार कहा जाता है। यह इसलिए कहा जाता है कि नमाज़ी का ध्यान बार-बार इस ओर जाये कि वह ख़ुद बिल्कुल ही कमज़ोर और बेचारा है और जिस बादशाह के आगे हाथ बाँधे खड़ा है उसका हुक्म सारे ही संसार की चीज़ों पर चलता है और उसकी महिमा अपरम्पार है। अल्लाहु अकबर को हर बार सोच कर अदा कीजिये इसके साथ ही कुछ बातों का ख़्याल रखिये।

(१) यह बात हर वक्त ध्यान में रखिये और भूल जाने पर बार-बार याद करते रहिये कि आप अल्लाह के सामने खड़े हैं और अल्लाह आपको देख रहा है। नबी स० से जब पूछा गया कि एहसान क्या है ? तो आपने फ़रमाया—

"उसकी बन्दगी इस तरह करो कि जैसे तुम उसे देख रहे हो और अगर तुम देख नहीं रहे हो, तो वह तुम्हें देख रहा है।

(२) नमाज़ में जो खड़ा होना, बैठना, रुकू (झुकना)

और सजदा है, ये सब बन्दगी व बेचारगी के सबसे बड़ें रूप हैं। ये बातें इसलिए फ़र्ज़ की गई हैं कि इन्सान अल्लाह की बन्दगी में पक्का हो जाये और फिर अल्लाह के सिवा किसी और के लिए ये बातें न करे।

बड़े दुख की बात है कि आजकल ज़्यादातर नमाज़ी ये बातें नमाज़ में करते तो हैं लेकिन समझ कर नहीं करते। यही तो वे बातें हैं जिनको समझ कर किया जाये तो मालूम हो कि सच्ची नमाज़ ऐसी होती है नहीं तो बे समझे-बूझे नमाज़ पढ़ लेना नमाज़ की नक़ल है न कि अस्ल नमाज़। जब आप अल्लाह के सामने हाथ बाँधे या हाथ खोले खड़े हों, आप जब उसके सामने बैठे हों, या उसके आगे झुके हुये हों, या उसके आगे सजदे में पड़े हों तो यह ध्यान में रखिये कि आप अल्लाह तआला के आगे खड़े हैं और गिड़गिड़ा कर उससे कुछ कह रहे हैं।

(३) नमाज़ में जो कुछ पढ़िये समझ कर पढ़िये और यह याद करके पढ़िये कि आप अल्लाह के सामने खड़े हैं और उससे बातें कर रहे हैं और कुछ क़ौल करार कर रहे हैं। नबी स० ने फ़रमाया—

"नमाज़ी अपने रब (स्वामी) से चुपके-चुपके बातें करता है। तो उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने रब से चुपके-चुपके क्या बातें करता है ?"

एक दूसरी हदीस में है कि 'अल्लाह तआला फ़रमाता है कि नमाज़ मुझ में और बन्दे में आधी-आधी बटी है। मेरे बन्दे को वह मिलेगा, जो उसने माँगा। तो जब बन्दा अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिलआलमिन" कहता है तो अल्लाह तआला

फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी तारीफ़ (प्रसंशा की) और जब वह "अर्रहमानिर्रहीम कहता है तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मुझे सराहा और जब वह "मालिकि यौमिद्दीन" कहता है तो फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी बड़ाई बयान की और जब वह कहता है "ईयाकनाबुदु व ईयाक नस्तईन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि यह मेरे और मेरे बन्दे के बीच पक्का वायदा हो गया और मेरे बन्दे को वह मिलेगा, जो उसने माँगा। फिर जब वह 'इहदिनस्सिरातल मुस्तक़ीमा सिरातल्लज़ीना अन्अम्ता, अलैहिम गैरिल मग़ज़ूबि अलैहिम वलज़्ज़ाल्लीन" कहता है तो अल्लाह फ़रमाता है कि यह मेरे बन्दे के लिए है और मेरे बन्दे को वह मिलेगा जो, उसने माँगा (मुस्लिम)

इन हदीसों से मालूम हुआ कि नमाज़ी नमाज़ में अल्लाह से बातें करता हैं। उससे पक्का वायदा करता है। उससे दुआयें करता है और अल्लाह उसकी बातों का जवाब देता है। जब यह बात है तो नमाज़ी जो कुछ भी बे समझे-बूझे पढ़ता है तो फिर सोचिये क्या यह अल्लाह तआला के साथ बे अदबी है या नहीं ? याद रखिये, यह बेअदबी ही है।

(४) आप नमाज में जो कुछ करें और कहें तो दिल से कहें सोचिए अगर आप दिल से अल्लाह की बन्दगी नहीं कर रहे हैं बल्कि दिखाने के लिए कर रहे हैं तो अल्लाह की नज़र में उसकी क्या क़द्र हो सकती है ? अल्लाह तो ज़ाहिरी बातों से ज़्यादा दिल को देखता है। इसलिए अल्लाह की बन्दगी का जो काम हो, यह इस तरह हो कि देखने में भी ठीक-ठीक हो और उसके साथ-साथ दिल भी ठीक रहे और यह याद रहे कि वह हमारे

दिलों को देख रहा है कि वह उसके आगे झुक रहा है या नहीं ? अस्ल क़ीमत तो दिल के झुकाव और सच्ची गिड़गिड़ाहट के साथ नमाज़ पढ़ने की है। गिड़गिड़ाहट में ज़ाहिरी बातों के साथ-साथ दिल का झुकाव भी शामिल है । क़ुरआन में है कि:—

"क्या ईमान वालों के लिये अब भी वह वक्त नहीं आया कि उनके दिल अल्लाह की याद के लिए और उस सत्य के लिए झुक जायें और गिड़गिड़ायें जो अल्लाह की ओर से उतरा है।

(५) यह ध्यान दीजिए कि आप नमाज़ में जो गिड़गिड़ाहट और बन्दगी जाहिर करते हैं तो वह आपकी जिन्दगी में मौजूद हैं। अगर ऐसा नहीं है तो आप अल्लाह से डरें और तौबा करें और फिर वचन दें कि ज़िन्दगी के हर काम में अल्लाह से डरते रहेंगे और दिल से उसके हुक्मों पर चलते रहेंगे। इसी लिए हर रकअत के दो सिजदों के बीच यह दुआ पढ़िए:—

"अल्लाहुम्मग़फ़िरली वरहमनी बहदिनी वाफ़िनी वरज़ु-क़नी" (ऐ अल्लाह ! मुझे माफ़ करदे। मुझ पर रहम कर, मुझे सीधे रास्ते पर रख, मुझे माफ़ी दे और रिज़क दे।)

नबी स० नमाज़ ख़त्म करने से पहले और नमाज़ ख़त्म करने के बाद तुरन्त ही माफ़ी की दुआ पढ़ा करते थे। ये सारी माफ़ी और तौबा अगर दिल के झुकाव के साथ हो और उनमें गिड़गिड़ाहट हो और नमाज़ी हर दो नमाज़ों के साथ बीच के समय अपनी जाँच पड़ताल करते हुए करे और पक्के इरादे के साथ करे तो ऐसी नमाज़ सचमुच इन्सान की काया पलट सकती है। जैसा कि क़ुरआन पाक में है कि:—बेशक नमाज़ हर बेशर्मी और बुराई से बचाती है।

नमाज़ क़ायम करना

क़ुरआन में नमाज़ की ताकीद जगह-जगह और बार बार आई है लेकिन हर जगह इसके लिए इन शब्दों में हुक्म आया है कि "नमाज़ क़ायम करो।" नमाज़ पढ़ने के शब्द क़ुरआन में कहीं नहीं हैं।

नमाज़ क़ायम करने का मतलब क्या है ? यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। अरबी बोली में जब किसी काम के बारे में बोला जाता है कि इसे क़ायम करना है तो इसका मतलब यह होता है कि उस काम को बहुत ही अच्छी तरह करना। इस तरह करना जैसे सचमुच करना चाहिए। इसी तरह जब यह शब्द नमाज़ के लिए बोला जाता है मतलब यह होता है कि नमाज़ इस तरह अदा करना चाहिए जिस तरह उसके अदा करने का हक़ है। नमाज़ के ठीक-ठीक अदा करने का जो हक़ है उसमें कई बातें शामिल हैं :—

(१) पहली बात तो यही है जिसे ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि नमाज़ सोच समझ कर और अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाते हुए और अल्लाह की अपरमपार बड़ाई को ध्यान में रखते हुए अदा करनी चाहिए। नमाज़ क़ायम करने के लिए यह पहली शर्त है। सच्चे मोमिन वही हैं जो अपनी नमाज़ों में अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाते हैं। क़ुरआन में है :—

"बेशक वे मोमिन कामयाब हो गये जो अपनी नमाज़ों में गिड़गिड़ाते हैं।"

(२) नमाज़ वक़्त पर अदा की जाये। वक़्त टाल कर या

देर करके नमाज़ पढ़ना ठीक नहीं इशा के अलावा बाक़ी सारी नमाज़ें नमाज़ का वक़्त होते ही (अव्वल वक़्त) पढ़ली जायें तो अच्छा है। इशा में कुछ देर करना मुनासिब है।

(३) मर्दों को नमाज़ जमाअत के साथ ही अदा करनी चाहिये। जो शख़्स किसी मजबूरी के बिना जमाअत की नमाज छोड़ दे, वह बड़ा गुनहगार होता है। मजबूरी भी ऐसी होना चाहिये, जिसकी इजाज़त शरीअत में हो। हदीस शरीफ़ जमाअत की नमाज़ की बड़ी ताकीद आई है। नबी स० ने फ़रमाया "जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने का सवाब अकेले नमाज़ में पढ़ने से २७ गुना ज़्यादा है।"

(बुख़ारी व मुस्लिम)

यह भी फ़रमाया :—

जिसने अज़ान सुनी और वह किसी मजबूरी के बिना जमाअत में आकर शामिल न हुआ तो जो नमाज़ वह अकेले पढ़ेगा, वह क़बूल ही न होगी। सहाबा ने पूछा "या रसूलुल्लाह वह मजबूरी क्या ? फ़रमाया "डर या रोग।"

डर और रोग का मतलब यह है कि मस्जिद तक पहुँचने में जान जाने का डर हो या कोई ऐसा रोग हो गया हो कि रोगी मस्जिद तक जा ही न सकता हो या अगर जाये तो रोग बढ़ जाने का डर हो।

जमाअत से नमाज़ की इतनी ताकीद है कि जिससे मालूम होता है कि जमाअत के बिना जैसे नमाज़ ही नहीं होती और कम से कम नमाज़ क़ायम करने की शर्त तो किसी तरह पूरी नहीं होती। जमाअत से नमाज़ का हुक्म ऐसा हुक्म है कि उसका

अन्दाज़ा आप इससे लगायें कि अगर दुश्मन से युद्ध हो रहा हो तब भी इस्लामी लश्कर को जमाअत ही से नमाज़ पढ़ने का हुक्म है। सभी जानते हैं कि इस्लामी युद्ध तो ख़ुदा ही को ख़ुश करने और इस्लाम का बोल बाला करने के लिए ही किया जाता है। इस तरह का युद्ध (जिहाद) इस्लाम में सबसे बड़ी इबादत है। ऐसी बड़ी इबादत में लगे रहते हुये भी जमाअत ही से नमाज़ पढ़ने का हुक्म है। अल्लाह ने ऐसे मौक़े पर जमाअत से नमाज़ पढ़ने का जो तरीक़ा बताया है वह क़ुरआन में इस तरह है :—

"ऐ नबी ! जब तुम ख़ुद इनमें मौजूद हो और उन्हें नमाज़ पढ़ाओ तो चाहिये कि उनमें का एक जत्था तुम्हारे पीछे अपने हथियार बाँधे-बाँधे नमाज़ पढ़ने खड़ा हो जाये और दूसरा-जत्था (गिरोह) दुश्मन का मुक़ाबिला करता रहे और पहला गिरोह एक रकअत पढ़ चुके तो जाकर दूसरे गिरोह की जगह ले ले और दुश्मन के सामने जा खड़ा हो और अब यह दूसरा जत्था आकर तुम्हारे पीछे नमाज़ में खड़ा हो जाये।"

इससे अन्दाज़ा लगाइये कि नमाज़ के लिए जमाअत कितनी ज़रूरी है। अल्लाह की राह में लड़ते हुए मौत का सामना है और हार जीत का मामला है मगर नमाज़ और जमाअत फिर भी न छोड़ी जाये।

(४) नमाज़ ठहर-ठहर कर इत्मीनान से पढ़ी जाये। खड़ा होना, रुक करना, रुकू के बाद सीधा खड़ा होना, सजदा करना, दोनों सजदों के बाद बैठना ये सारे काम बड़े इत्मीनान और अदब के साथ होने चाहियें। नमाज़ में गिड़गिड़ाने के सिलसिले में ऊपर जो बातें कही जा चुकी हैं, उनको ध्यान में रखा जाये

तो यह बात आप से आप पैदा होगी। नमाज़ में इत्मीनान और अदब के बारे में नीचे लिखी बात को भी पढ़ना अच्छा रहेगा।

एक बार नबी स० मस्जिद में आये। इतने में एक आदमी आया उसने नमाज़ पढ़ी फिर आकर हुजूर को सलाम किया। आपने सलाम का जवाब दिया और फ़रमाया "जाओ फिर नमाज़ पढ़ो, तुम्हारी नमाज़ नहीं हुई। तीन बार ऐसा ही हुआ (कि वह नमाज़ पढ़कर आता और आप फ़रमाते "जाओ फिर नमाज़ पढ़ो, तुम्हारी नमाज़ नहीं हुई) इसके बाद उसने कहा "उसकी क़सम, जिसने आपको सच्चा दीन देकर भेजा है, मुझे इससे बेहतर नमाज़ पढ़ना नहीं आती, आप मुझे सिखा दीजिये।" हुजूर ने फ़रमाया "जब तुम नमाज़ के लिए खड़े हो तो पहले खूब अच्छी तरह वुज़ू करो फिर काबे की तरफ़ मुंह करके खड़े हो। फिर "अल्लाहु अकबर" कह कर क़ुरआन की जो आयतें पढ़ना तुम्हारे लिए आसान हो, वे पढ़ो (यानी खड़े-खड़े जो कुछ पढ़ा जाता है, वह सब पढ़ो) फिर रुकू करो और तुम्हारा रुकू इत्मीनान के साथ हो फिर उठो और इत्मीनान के साथ खड़े हो जाओ फिर पूरे इत्मीनान के साथ सजदा करो, फिर बड़े इत्मीनान के साथ दूसरा सजदा करो। (बुखारी)

जो लोग नमाज़ में जल्दी करते हैं वे अपनी नमाज़ को बेकार कर देते हैं। नमाज़ को अक़ामत के लिए अदब व इत्मीनान बहुत ज़रूरी है।

(५) क़ुरआन और हदीस में नमाज़ के बारे में शर्तें बयान हुई हैं, चाहे वे शर्तें वे हों जो देखी जायं या वे हों जिनका लगाव

मन से हो, जिन्हें देखी न जायें, उन सारी शर्तों का ख़्याल रखा जाये। नमाज़ की अक़ामत में ये सारी बातें शामिल हैं। इन बातों के साथ नमाज़ पढ़ने ही को 'नमाज़ का क़ायम करना' कहेंगे। यही नमाज़ इस्लाम की अस्ल बुनियाद है और इसी से दीन क़ायम होगा।

ज़कात

इस्लाम का तीसरा रुक्न (थम) ज़कात हैं। क़ुरआन मजीद में जगह-जगह ज़कात देने का हुक्म है। जिस तरह नमाज़ क़ायम अरना मुसलमान की पहिचान है, इसी तरह ज़कात अदा करना भी मुसलमान के लिए ज़रूरी हुक्म है। क़ुरआन पाक में जहाँ-जहाँ नमाज़ क़ायम करने का हुक्म है, उसके साथ ही ज़कात देने का भी हुक्म है। एक जगह तो यह तक फ़रमा दिया गया कि ज़कात न देना मुश्रिकों का काम है। सूरः हा—मीम सजदा में है कि—

وَوَيْلٌ لِّلْمُشْرِكِيْنَ ۝ الَّذِيْنَ لَا يُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَهُمْ بِالْاٰخِرَةِ هُمْ كٰفِرُوْنَ ۔(سورۂ حم سجدہ آیت)

"उन मुश्रिकों के लिए बड़ी तबाही है जो ज़कात नहीं देते और जो आख़िरत का इन्कार करते हैं।" (आयत ६, ७)

बात भी यही है, जिन लोगों को आखिरत का यक़ीन नहीं है और जो यह नहीं मानते कि एक न एक दिन उन्हें अपने मालिक के सामने खड़े होकर कर्मों की तुलना कराना है। वही ऐसे ढीठ हो सकते हैं कि जानते-बूझते अल्लाह के हुक्मों को ठुकरा दें और जिस मालिक ने सब कुछ दिया है, उसी का हुक्म टाल दें और उसकी राह में माल ख़र्च न करें। ज़कात न देने वालों के लिए क़ियामत में बड़े कड़े अज़ाब की धमकी दी गई है। सूरः तौबा में साफ़-साफ़ फ़रमाया गया कि जिस माल की ज़कात न दी जायेगी और धन जोड़-जोड़कर रखा जायेगा वह क़ियामत के दिन उसकी जान का जंजाल बनेगा। उसी के माल से उसके माथे और कमर को दागा जायेगा और यह कहा जायेगा कि ले आज उस दौलत का मज़ा चख, जिसे तू जोड़-जोड़ कर रखा करता था!

सोचिये, एक आदमी अल्लाह पर ईमान लाता है। वह यह मान लेता है कि असल मालिक अल्लाह ही है। वही जिसे चाहता है, देता है, उसे जो कुछ भी मिला है और जो मिलेगा, उसी अल्लाह के देने से मिलेगा। ये सब कुछ मान लेने के बाद माल की ज़कात नहीं निकालता और जिस जगह अल्लाह ने माल ख़र्च करने को कहा है, वहाँ ख़र्च नहीं करता तो उससे ज्यादा आप अपना दुश्मन कौन है? ऐसा आदमी अपने पाँव में खुद कुल्हाड़ी मारता है और अपने ऊपर ख़ुद ही ज़ुल्म करता है। सोचिये, जो माल अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से उसको उसके सुख के लिये दिया था, उसे वह अपने लिये साँप बिच्छू बना रहा है। इस दुनिया की चार दिन की ज़िन्दगी के लिये

आखिरत की सदा रहने वाली जिन्दगी को तबाह करने पर तुला है।

धन-दौलत का मोह इन्सान में बड़ी खराबियाँ पैदा कर देता है। सच पूछिये तो हज़ारों बुराइयों की जड़ यही मायामोह है। दूसरों को सताना, फ़साद और झगड़ा, डाका, चोरी और दूसरी बड़ी-बड़ी बुराइयाँ माया मोह के कारण ही पैदा होती हैं और इसी से बढ़ती हैं। यह बात तो आजकल इतनी खुलकर सामने आ गई है कि सभी लोगों ने अच्छी तरह यह समझ लिया है कि आजकल की मुसीबतों का एक बड़ा कारण यही दौलत का पुजारी होना है। यूं देखा जाये तो धन दौलत खुद कोई बुरी चीज नहीं बल्कि यह तो अल्लाह की नेमत है। इसी से तो हमारी ज़रूरतें पूरी होती हैं। इसी से हमें सुख और आराम मिलता है। लेकिन यह नेमत उस वक़्त तक नेमत रहती है जब तक लोग उससे वही काम लें जो लेना चाहिये। उसके पुजारी न बनें। जब यह दौलत इन्सान को हर चीज़ से ज्यादा प्यारी हो जाती है और जब इस देवी (लक्ष्मी) की पूजा होने लगती है तो वह सर्मायादारी (पूंजीपतिवाद) फूट पड़ती है जो आज दुनिया में सबसे बड़ी लानत है।

अल्लाह का दीन इन्सानों के लिये रहमत ही रहमत है। इसी लिये इस्लाम इसको कभी पसन्द और गवारा नहीं कर सकता कि उसके नाम लेने वालों के दिलों में दौलत की मुहब्बत बैठे। इस्लाम दौलत को बुरा नहीं कहता बल्कि इसे खुदा की नेमत बताता है लेकिन उसकी मुहब्बत और उसमें मन लगाये रखना हरगिज पसन्द नहीं करता। इस्लाम चाहता है कि दौलत

काम में लगे। उसका ज्यादा से ज्यादा लोग फ़ायदा उठायें। इस्लाम दौलत को ख़र्च करने के तरीक़े बताता है। दूसरों की मदद करने और अल्लाह की राह में ख़र्च करने के बदले में आख़िरत की ऐसी नेमतों का यक़ीन दिलाता है कि एक मोमिन पूंजीपति बनने के बदले पूंजी को अल्लाह की राह में ख़र्च करना ज्यादा पसन्द करता है। इस्लाम की पूरी शिक्षा हो। समाज में इस शिक्षा के मुताबिक अमल हो रहा हो तो वहाँ वह सर्माया-दारी जो आज दुनिया में लानत बनी हुई है, पैदा नहीं हो सकती। इस बात को समझने के लिये इस्लाम के सारे उसूल (नियम) जानने की ज़रूरत है, जो वह व्यापार, खेती, ब्याज, औलाद के हक़-हुक़ूक़, और दौलत को बेकार ख़र्च करने और ग़लत तरीक़े से रोक रखने के बारे में देता है। इन सारे तरीक़ों में ज़कात के तरीक़े को सब पर बड़ाई हासिल है।

ज़कात वह बुनियादी इलाज है जो सर्मायादारी के असल रोग की जड़ काटकर रख देता है। ज़कात अदा करने से माल की मुहब्बत दिल से दूर होती है और इन्सान की मुट्ठी अल्लाह की ख़ुशी और आख़िरत की कामयाबी की उम्मीद पर खुल जाती है। फिर यह खुली हुई मुट्ठी हर उस मौक़े पर खुली रहती है, जहाँ यह मालूम हो जाये कि माल के ख़र्च करने से अल्लाह की ख़ुशी और आख़िरत में सवाब मिलेगा। फिर इस्लाम ने ज़कात की वसूली और तक़सीम का जो तरीक़ा बनाया है, वह ख़ुद समाज के आर्थिक (मआशी) सुधार का एक अच्छा ज़रिया है। इस्लाम यह हरगिज़ नहीं चाहता कि हर आदमी अपनी ज़कात निकालकर ख़ुद ही जिसको चाहे दे दे।

इस तरह ज़कात लेने वालों को लज्जा आती है और उनकी इज्जत को धक्का लगता है और ज़कात देने वाले के दिल में घमंड पैदा होने का डर होता है। इस्लाम ज़कात वसूल करने और हक़दारों में तक़सीम करने का ठीक ढंग यह बताता है कि इस्लामी हुकूमत के कारिन्दे हर मुसलमान से ज़कात वसूल करें। वसूल करके बैतुल माल (इस्लामी खज़ाने) में इकट्ठा करें फिर वहाँ से हुकूमत अपने इन्तिज़ाम से हक़दारों को पहुँचाये। जब तक इस्लामी क़ानून चलता रहा, ज़कात इसी तरह वसूल होती और तक़सीम होती रही।

नबी स० के बाद कुछ मुसलमानों ने यह चाहा था कि वे अपनी ज़कात की रक़म खुद ही हक़दारों को दे दिया करेंगे। बैतुल माल में नहीं जमा करेंगे तो इस्लाम के पहले खलीफ़ा हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ रज़ि० ने इन लोगों के खिलाफ़ जिहाद का हुक्म दे दिया था। इससे अन्दाज़ा कर सकते हैं कि इस्लाम में ज़कात का कितना ऊँचा स्थान है और इसके अदा करने का ठीक तरीक़ा क्या है? जब इस्लामी क़ानून को लपेट कर अलग रख दिया गया तो चाहिये यह था कि मुसलमान फिर इस्लामी क़ानून को लागू करने की कोशिश करते और ज़कात अदा करने का कोई न कोई ढंग अपना लेते। इसमें बड़ी बरकत थी। इसीलिए इस्लामी क़ानून उठ जाने के बाद सदा समझदार मुसलमान एक जगह ज़कात इकट्ठा करने और मुनासिब ढंग से हक़दारों तक पहुँचाने की कोशिश में लगे रहे हैं।

ज़कात इस्लाम का बहुत बड़ा रुक्न (थम) है। इसका अदा करना हर मालदार पर फ़र्ज़ है। जो इसके फ़र्ज़ होने से

इन्कार करे, वह काफ़िर हो जाता है और जो ज़कात न दे, वह बड़ा गुनाहगार होता है।

ज़कात अदा करने के बाद भी इस्लाम मुसलमानों को ख़ैर ख़ैरात पर उभारता है। ज़कात देकर ख़ैरात करने से मुँह न मोड़ लेना चाहिये बल्कि अल्लाह की राह में कुछ न कुछ ख़र्च करता रहे। इस बात को नमाज़ ही की मिसाल से समझिये :—

देखिये, नमाज़ अल्लाह की इबादत और उसकी याद का सबसे अच्छा तरीक़ा है और सबसे बड़ा फ़र्ज़ भी है लेकिन अगर कोई आदमी नमाज़ अदा करने के बाद फिर किसी और वक़्त में ख़ुदा को याद न करे तो आप क्या कहेंगे कि उसके दिल में पूरे तौर से अभी इस्लाम नहीं बैठा। नमाज़ पढ़ने का फ़ायदा ही यह है कि इन्सान को अल्लाह हर वक़्त याद रहे और वह पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह की ताबेदारी करने लगे।

इसी तरह ज़कात का मामला है। ज़कात देने के बाद उससे ज़बरदस्ती ख़ैरात कोई नहीं ले सकता लेकिन ज़कात निकाली इसीलिये जाती हैं कि इन्सान के दिल से दौलत की मुहब्बत निकल जाये और इन्सान इसके लिये जब मौक़ा मिले अल्लाह की ख़ुशी और आख़िरत के सवाब की उम्मीद में दिल खोलकर ख़र्च कर सके। अगर किसी के दिल की मुहब्बत दूर नहीं हो रही है और उसका हाथ अल्लाह की राह में ख़र्च करने के लिये नहीं बढ़ता तो उसका ज़कात देना ऐसा ही है, जैसा कि आजकल बहुत से नमाज़ियों का नमाज़ पढ़ लेना और फिर नमाज़ के बाद अल्लाह को याद न रखना।

ऐसे शख़्स को चिन्ता होनी चाहिये। अल्लाह की राह में

अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा ख़र्च करके अपने दिल से इस रोग को दूर करना चाहिये। अपने आप दुख उठाकर अल्लाह की ख़ुशी के लिये माल खर्च किया जाता है तो उससे अल्लाह की ख़ुशी का काम करके अपना दिल ख़ुश होता है। अल्लाह तआला ने ऐसे लोगों की दुनिया व आख़िरत में सफल होने की उम्मीद दिलाई है फ़रमाया :—

وَمَنْ يُّوْقَ شُحَّ نَفْسِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ۔

(الحشر۔آیت ۹)

"जो लोग थोड़ दिली से बच गये वही (दुनिया आख़िरत) में सफल होने वाले हैं। (सूर: हश्र आयत ९)।

ज़कात अदा करना या अल्लाह की राह में ख़ैरात करना इस्लाम की बुनियादी इबादत है। इस इबादत से ईमान पाक होता है। जो माल किसी दबाव से या लोगों के दिखाने के लिये खर्च किया जाता है उससे यह फ़ायदा नहीं होता बल्कि दिखावे के लिये ख़र्च करने वाले से तो अल्लाह नाख़ुश रहता है।

ज़कात, माल, गहना, बाग़, पशु आदि पर दी जाती है। इन सबके बारे में जानकारी होनी चाहिये और फ़र्ज़ को अदा करने के लिये अपने को तैयार रखना चाहिये। आजकल ज़कात अदा करने की ओर से बिल्कुल बेपरवाही बरती जाती है।

रोज़ा

इस्लाम का चौथा रुक्न (थम) रोज़ा है। रोज़ा भी दीन की इमारत का बहुत ज़रूरी थम है। नमाज़ और ज़कात की तरह यह भी उसी तरह हम पर फ़र्ज़ किया गया है जिस तरह दूसरे नबियों की उम्मतों पर फ़र्ज़ था।

अल्लाह तआला का इरशाद है।

"ऐ ईमान वालो तुम पर रोज़ा फ़र्ज किया गया है जैसा कि तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज किया गया था। उम्मीद है कि (रोज़ा रखने के बाद) तुम परहेज़गार बन जाओगे यानि अपने हर काम में अल्लाह की नाख़ुशी से डर कर उसके कानून की पैरवी करोगे।"

(अल्वक़रा आयत १८३)

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِينَ مِن قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ ـ

(البقرہ۔آیت ۱۸۳)

दीन इस्लाम में रमज़ान के पूरे महीने के रोज़े फ़र्ज़ हैं। किसी मजबूरी के बिना जो शख़्स रोज़ा छोड़ दे, वह बहुत ही बड़ा गुनाहगार होता है। हाँ जो मुसाफ़िर हो या बीमार हो या उसे कोई ऐसी मजबूरी हो, जिसमें अल्लाह के क़ानून ने रोज़ा न रखने की आज्ञा दे दी हो। तो वह रोज़ा छोड़ सकता है लेकिन इन दिनों के बदले दूसरे दिनों में रोज़े रख कर इस फ़र्ज़ को पूरा करना ज़रूरी है। हुज़ूर स० ने फ़रमाया :—

"जो शख्स किसी बीमारी या रोग के बिना रमज़ान का एक रोज़ा छोड़ दे तो अगर उसके बदले सारी उम्र भी रोज़े रखे तो भी उस एक रोज़े का पूरा हक़ अदा न हो सकेगा।"

हदीसों में रोज़ा रखने वालों के लिए बहुत बड़े सवाब की खुशखबरी आई है। हुजूर स० ने फ़रमाया "जो शख्स पूरे ईमान और यक़ीन के साथ सिर्फ़ अल्लाह को खुश करने के लिये रमज़ान के रोज़े रखे तो उसके सारे पिछले गुनाह माफ़ कर दिये जायेंगे।"

दूसरी तमाम इबादतों और रोज़े में एक खास फ़र्क है। किसी इबादत को देखिये, आप देखेंगे कि जब कोई इबादत अदा की जाती है तो जिस तरह वह अदा की जाती है, लोग उसे देख और जान सकते हैं। नमाज़ पढ़ना लोग देख सकते हैं। ज़कात अदा करना छुप नहीं सकता। कोई न कोई जान ज़रूर सकता है। हज करने को तो बहुत सारे लोग देखते हैं। इसी तरह क़ुरबानी करने को कोई छुपा नहीं सकता आदि। परन्तु रोज़ा एक ऐसी इबादत है जिसका मामला केवल अल्लाह और बन्दे के दरमियान होता है। रोज़े को कोई देख नहीं सकता। अगर कोई छुप कर खा पी ले और कहदे कि मैं रोज़े से हूँ तो लोग यही जानेंगें कि रोज़ादार है। रोज़ा रखने या न रखने को सिर्फ अल्लाह ही जान सकता है। तो बस रोज़ा वही रख सकता है, जिसको यह यक़ीन होता है कि अल्लाह हर छुपी चीज़ का जानने वाला है। कोई काम उससे छुपकर नहीं किया जा सकता। इसी लिये रोज़-दार कभी छुप कर भी कोई ऐसा काम नहीं कर सकता कि उस का रोज़ा जाता रहे। रोज़ादार को यह भी यक़ीन होता

है कि उसे अपने रोज़े का बदला सिर्फ़ अल्लाह से लेना है। अगर वह रोज़ा नहीं रखेगा तो अल्लाह तआला उससे ना खुश हो जायेगा और आख़िरत में उसे बड़ा कड़ा अज़ाब भुगतना पड़ेगा। इसी लिये रोज़ा रखने से अल्लाह और आख़िरत पर ईमान मज़बूत हो जाता है और बन्दे का लगाव अल्लाह से बढ़ता जाता है। एक हदीस में है, आपने फ़रमाया कि अल्लाह ने फ़रमाया "रोज़ा मेरे लिये है और उसका बदला देना मेरे ज़िम्मे है।"

लेकिन रोज़े के बारे में भी हम वही बात फिर दुहराते है है कि जिस तरह सोच समझकर नमाज़, हज ज़कात जैसी इबादतें अदा करने से उनका असर हमारी ज़िन्दगीं पर पड़ता है, और हमारी ज़िन्दगी के सारे काम अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक हो जाते हैं, इसी तरह रोज़ें का ठीक-ठीक असर उसी वक्त ज़ाहिर हो सकता है, जब रोज़ा अच्छी तरह सोच समझ कर रखा जाये। सोच-समझकर अल्लाह को सब कुछ जानने वाला और देखने वाला जानते हुये और उसकी खुशी के लिए रोज़ा रखा जायेगा तो उससे रोज़ेदार की काया पलट सकती है। जो शख़्स अल्लाह के डर से और आख़िरत की पूछ-ताछ को ध्यान में रखकर रोज़े में खाना-पीना छोड़ सकता है, उससे यह कैसे हो सकता है कि वह ज़िन्दगी के बाक़ी कामों में अल्लाह के हुक्मों को टाल देगा और बराबर टालता रहेगा। न उसे अल्लाह का डर होगा और न आख़िरत की चिन्ता।

अल्लाह तआला फ़रमाता है कि रोज़ा रखने से 'तक़वा' पैदा होता है। तक़वा क़ुरआन का एक खास शब्द है। इसका अर्थ है "अल्लाह के डर से बुराई से बचना। मतलब यह हुआ

कि अगर सोच समझ कर रोज़ा रखा जाये तो रोज़ादार की ज़िन्दगी गुनाह से पाक होने लगती है। रोज़ा रखनेवाला अल्लाह की ना ख़ुशी से डरता है और ठीक-ठीक उसके हुक्मों के मुताबिक़ काम करता है। सच्ची इस्लामी ज़िन्दगी बिताने के लिये अल्लाह की नाख़ुशी का डर और उसकी ख़ुशी की चाह बहुत ज़रूरी है। जिस शख़्स को न अल्लाह का डर हो और न उसे ख़ुश करने की चाह, वह इस्लामी ज़िन्दगी कभी नहीं बिता सकता।

अल्लाह ने तो फ़रमाया है कि रोज़े से तक़वा पैदा होता है लेकिन यह तक़वा आप से आप पैदा नहीं हो जाता। इसके लिये ज़रूरी है कि रोज़ादार जहाँ तक हो सके, इस बात की पूरी कोशिश करे कि वह कोई काम अल्लाह के हुक्मों के ख़िलाफ़ न करे। जो शख़्स रोज़ा तो रखता है लेकिन अल्लाह के हुक्मों के ख़िलाफ़ काम भी करता है तो उस शख़्स को रोज़ा ज़बरदस्ती नेक नहीं बना सकता। जोलोग रोज़ा रखकर झूठ भी बोलते हैं हराम व हलाल की परवाह नहीं करते वे ज़िन्दगी के कामों में अल्लाह का हुक्म टालने वालों और उसके बाग़ियों की तावेदारी करते रहते हैं। बेईमानी, धोखा, गाली गलोज, पीठ पीछे लोगों की बुराई करना और इसी तरह के दूसरे पापों में फंसे रहते हैं। उन्हें रोजे से कोई फ़ायदा नहीं होता। वे बेकार भूखे रहते हैं और भूख प्यास की तकलीफ़ उठाते हैं। नबी स० ने फ़रमाया :—

"जब किसी ने झूठ बोलना और ग़लत काम करना ही न छोड़ा तो अल्लाह को इसकी कोई हाजत नहीं कि उसका खाना और पीना छुड़ा दे।" एक और हदीस में फ़रमाया :—

बहुत से रोज़ेदार ऐसे हैं कि रोज़े से भूख और प्यास के सिवा उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता।"

दूसरी तमाम इबादतों की तरह हमारे रोज़ों में भी जान नहीं रह गई है। इसका कारण भी वही है कि इबादत को यूँही सोचे समझे बिना रस्म रिवाज की तरह अदा किया जाता है। ठीक-ठीक इस्लामी ज़िन्दगी पैदा करने और आख़िरत की कामयाबी हासिल करने के लिये रोज़ों पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिये और ज़िन्दगी के तमाम कामों में अल्लाह के हुक्मों के ख़िलाफ़ काम करने से बचना चाहिये।

सच्ची बात यह है कि तक़वा ईमान और इस्लाम की जान है। मुसलमान को ज़िन्दगी के सारे काम अल्लाह की नाख़ुशी से डरते हुये और उसके हुक्मों के मुताबिक़ करना चाहिये। यही तक़वा है। मोमिन को हर वक़्त कोशिश करना चाहिये कि उसमें यह गुण ज़्यादा से ज़्यादा पैदा हों परन्तु इस गुण को पैदा करने के लिये रोज़ा बड़े काम का है। ख़ासकर रमज़ान का महीना, जिसमें सारे मुसलमानों को एक साथ एक महीने के लिये रोज़े रखने का हुक्म है। यूँ समझना चाहिये कि ज़िन्दगी को तक़वा से निखारने के लिये इस महीने में ख़ासकर ध्यान दिया जाता है। हर मुसलमान को आदेश दिया जाता है कि इन दिनों में ख़ासतौर पर अल्लाह से डरता रहे और बुराइयों से बचता रहे और ज़्यादा से ज़्यादा नेकियाँ करे। इस तरह पूरी इस्लामी ज़िन्दगी को नेकी और तक़वा से भर दिया जाता है और रमज़ान के महीने में कुछ ऐसी बात छा जाती है कि चारों ओर नेकियाँ ही नेकियाँ हों और बुराइयाँ फैलाने वाले शैतानों

का सिर उठाना कठिन हो जाये।

रमज़ान के अलावा भी नफ़्ल रोज़े रखने से अल्लाह से लगाव बढ़ता है और ज़िन्दगी को तक़वा की ज़िन्दगी बनाने में मदद मिलती है। हदीसों में इसीलिये बहुत से नफ़्ल रोज़ों की बड़ाई आई है जैसे दस्वी मुहर्रम का रोजा, चाँद के हिसाब से हर महीने की १३, १४, १५ तारीख़ को रोज़ा रखना। आदि

आख़िर में यह बात फिर याद कर लीजिये और याद रखिये कि रोज़ा रखने से उसी वक्त फ़ायदा पहुँचेगा, जब अच्छी तरह सोच समझकर रखा जाये और रोज़े को सचमुच तक़वा पैदा करने का ज़रिया बनाया जाये। रस्मी तौर पर भूखा प्यासा रहना कुछ ज़्यादा लाभदायक नहीं होता।

हज

हज का अर्थ है "काबे का दर्शन करने जाना।"

हज, इस्लाम का पाँचवाँ रुक्न (थम) है। जो मुसलमान काबा तक जाने आने का ख़र्च उठा सकता हो, उस पर ज़िन्दगी में एक बार हज के लिये जाना फ़र्ज़ है। यह बात क़ुरआन और सुन्नत से बिल्कुल साबित है। यानी किसी सन्देह और शक के बिना मालूम होती है। यहाँ तक फ़रमाया गया है कि जो लोग काबा तक जा सकते हैं फिर भी वे जाने से इन्कार करें तो उन्होंने कुफ़्र किया। साथ ही यह भी बता दिया गया कि जिस तरह इस्लाम के बताये हुए सारे आदेश इन्सानों ही के फ़ायदे के हैं इसी तरह हज का हुक्म भी इन्सान ही के फ़ायदे के लिये

हैं। इसमें ख़ुदा का कोई फ़ायदा नहीं है। ख़ुदा तो बेनियाज है यानी वह किसी का मोहताज नहीं है बल्कि सब उसके मोहताज हैं। नही ख़ुदा को किसी की बन्दगी की ज़रूरत है और नही ख़ुदा को इसकी ज़रूरत है कि किसी का हुक्म टालने से डरे। सच यही है कि हज में ख़ुद उन लोगों का भला है, जो हज को जाते हैं।

आपने सुना होगा, काबे को अल्लाह के एक बड़े नबी हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने बनाया था। आज से कोई साढ़े चार हजार वर्ष पहले की बात है, जब हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने अल्लाह का दीन लोगों के सामने पेश किया और उन्हें अल्लाह के हुक्म और आदेश सुनाये थे। उस वक़्त लोग अल्लाह को छोड़कर हज़ारों मनगढ़त ख़ुदाओं की बन्दगी और पूजा करते थे। मिट्टी और पत्थर की मूर्तियाँ, आसमान के तारे, जिन्न, फ़रिश्ते, देवी-देवता, चाँद, सूरज और अपने महा-पुरुषों और ऐसे ही न जाने कैसे-कैसे बनावटी ख़ुदा बना लिये गये थे, जिनके सामने लोग सिर झुकाते थे, उनके बारे में यक़ीन व विश्वास रखते थे कि ये बनावटी ख़ुदा लाभ या हानि पहुँचा सकते हैं। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने लोगों को तौहीद (अल्लाह एक है) की शिक्षा दी। आपने बताया कि अल्लाह के सिवा न ही कोई पूजने के लायक़ है और न ही उसकी बन्दगी की जा सकती है। सजदा भी उसी के आगे होना चाहिये और बन्दगी व ताबेदारी भी उसी की करना चाहिये। हज़रत ने तौहीद की इसी शिक्षा के लिये काबे को केन्द्र बनाया। काबे में सिर्फ़ अल्लाह की इबादत होती थी। लोग सिर्फ़ अल्लाह के

सामने अदब से खड़े होते थे, रुकू और सजदा करते थे। आपने काबे को तौहीद का केन्द्र बनाकर सारे देश में ऐलान करा दिया कि एक अल्लाह के पुजारी अल्लाह के घर (काबा) की तरफ़ आयें। दूर से भी आयें और नज़दीक से भी आयें। काबे में उन्हें तौहीद की शिक्षा मिलती थी। और सचमुच जिस प्रकार अल्लाह की बन्दगी करनी चाहिये उसका ठीक-ठीक पाठ पढ़ाया जाता था। अल्लाह के सिवा हर खुदा और देवता की तरफ़ से मुँह मोड़कर सिर्फ़ अल्लाह का बन्दा और दास बनने पर ज़ोर दिया जाता था। ऐसा बन्दा जो हर हाल में सिर्फ़ खुदा का बन्दा हो और किसी तरह भी किसी और की बन्दगी करने के लिए तैयार न हो।

काबा तक जाने और उसके दर्शन का यह मतलब था। हज़रत इब्राहीम की मृत्यु के बाद बड़े समय तक काबा तौहीद का केन्द्र बना रहा लेकिन फिर एक समय ऐसा आया कि लोगों ने अल्लाह को भुला दिया। मूर्ति पूजा के चक्कर में फँस गये। इसी काबा में सैकड़ों मनगढ़त खुदाओं की मूर्तियाँ बनाकर रख लीं। और तो और खुद हज़रत इब्राहीम और उनके बेटे हज़रत इस्माईल की भी मूर्तियाँ बनाकर काबे में रख ली गई थीं और उनकी पूजा हो रही थी।

सैकड़ों वर्ष तक काबे में मूर्ति पूजा होती रही। आखिर अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से अपने आखिरी रसूल हज़रत मुहम्मद स० को अपना रसूल बनाया। आपने खुदा के इस घर (काबा) को इस शिर्क (मूर्ति पूजा) से पाक किया और फिर उसे तौहीद का केन्द्र बना दिया। तौहीद, इस्लाम की बुनियाद है

और काबा तौहीद की सबसे बड़ी यादगार और सबसे बड़ा केन्द्र है।

आजकल हमारे हज की दशा भी वही है जो नमाज़, रोज़ा और ज़कात आदि इबादतों के बारे में ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि सब बेसोचे समझे की जाती हैं। हज़ जैसी अहम इबादत भी अब उसका अस्ल मतलब समझे बिना ही की जाती है। इसीलिए इस इबादत की भी वही मिसाल है कि जैसे अब उसका जिस्म (ज़ाहिरी, दिखावा) तो रह गया लेकिन उसकी जान (असल काम व मतलब) निकल चुकी है। अगर ऐसा न हो बल्कि सारे हाजी इस इबादत को उसी तरह सोच समझकर करें, जिस तरह अदा करना चाहिये तो इसमें हमारे लिए बड़ी बरकत है।

हज के सिवा जो दूसरी इबादतें हैं, उनका ज्यादातर असर उसी पर पड़ता है, जो उसे अदा करता है लेकिन हज ऐसी इबादत है, जिसका असर जितना ख़ुद हाजी पर पड़ता है उतना ही दूसरे लोगों पर पड़ता है। जो हाजी हज के लिये जाता है, उसके दिल में ईमान की रोशनी, अल्लाह की मुहब्बत, अल्लाह के दीन (इस्लाम) पर जमे रहने की हिम्मत और अल्लाह की ख़ुशी के लिये हर प्रकार का दुख और मुसीबत झेल ले जाने का हौसला बढ़ता ही है, लेकिन इसका असर जो दूसरों पर पड़ता है, वह भी बड़ा ही क़ीमती है।

ज़रा सोचिये, जिस वक़्त से कोई मुसलमान हज को जाने की तैयारी करने लगता है तो उसका ध्यान आप से आप अपनी बुराइयों को दूर करने की ओर जाता है और वह बुराइयों को

दूर करने की कोशिश भी करने लगता है। अब वह जब लोगों से मिलता है तो उस पर अल्लाह का डर छाया रहता है। आज से पहले यदि उसने किसी का कोई हक़ मारा या दबा लिया है तो उस हक़ को अदा करता है। लोगों से अपनी भूल चूक की माफ़ी माँगता है। तो उसकी यह दीनदारी देखकर लोगों पर अच्छा असर पड़ता है। उसे देखकर लोगों को ख़ुदा याद आने लगता है और लोगों को भी अपनी आख़िरत बनाने की फ़िक्र (चिन्ता) होने लगती है। फिर जब हाजी सफ़र करते हैं और अपने सफ़र में लोगों के सामने अपने अच्छे आचार-विचार और अच्छी आदतों का नमूना पेश करते हैं तो उन्हें देखकर लोगों के दिलों पर इस्लाम की गहरी छाप पड़ती है। लोग यह समझ लेते हैं कि अल्लाह वालों की बातें कैसी होती हैं और वे किस तरह मामला करते हैं। पूरे ही सफ़र में हाजी का और उनको देखने वालों के दिलों का झुकाव और लगाव अल्लाह की तरफ़ ज़्यादा से ज़्यादा होता है। वे अपने कामों और अपनी बातों में अल्लाह के हुक्मों का ख्याल रखने लगते हैं। उनके मन में भी हज करने की उमंग उमड़ने लगती है। यह तो असर मुसलमानों पर पड़ता है। रहे वे लोग जो मुसलमान नहीं हैं तो वे हज को जाने वाले में उसकी पिछली भूल चूक के बदले हज को जाते समय की अच्छी बातें देखते हैं तो इस्लाम के बारे में उनकी राय बड़ी अच्छी बनती है। इसी तरह हज से वापस होने के बाद जब हाजी तौहीद के मरकज़ (केन्द्र) की बरकतें लोगों को बताता है तो मुसलमानों को ऐसा लगता है जैसे उनका ईमान सोया हुआ था और हज की बरकतें सुनकर जाग गया है। अब

हज से वापस होने वाले हाजी की ईमानदारी और अल्लाह के हुक्मों को सुनकर उन पर अमल करने के लिए दौड़ पड़ना देख-देखकर दूसरे लोग यही बातें करने लगते हैं और वे यह सोचने लगते हैं कि हाजी काबे की ज़ियारत को जाकर कोई ऐसा ख़ज़ाना साथ लाया है जो धन दौलत से बढ़कर है और इंसान को सच्ची ख़ुशी और शान्ति देने वाला है और अब वह यही ख़ज़ाना दूसरों को बाँट रहा है।

इस्लाम के हुक्मों पर एक मुसलमान तो इस तरह अमल करता है कि वह नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज अदा तो करता है पर कुछ भी नहीं सोचता कि इबादतों के करने का अस्ल मतलब क्या है ? और इन्हें अदा करने से हमारी ज़िन्दगी में क्या तब-दीली हो जाना चाहिए ?

यह तो हुआ वह मुसलमान जो बेसोचे समझे इबादत करता है। उसका मन और उसकी आत्मा ऐसी इबादतों से नहीं जागती। वह एक तरफ़ नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज अदा करता है, दूसरी तरफ़ झूठ बोलने, बेईमानी करने, दूसरों के आगे सिर झुकाने और ऐसी ही हरकतें भी करता है। ऐसी इबादतें ख़ुद ऐसे लोगों के गले की फाँसी बनेंगी। हम जो आपको ध्यान दिलाते हैं, तो वह यह है कि आप जो इबादत करें, सोच समझकर करें। सोच समझकर इबादतें करने के भी दो रूप हमारे सामने आते हैं।

एक तो यह कि मुसलमान उन्हें अल्लाह का हुक्म और उसका क़ानून समझकर पूरे ध्यान से करता है, और इसमें कोई

कमी नहीं आने देता। इबादत का यह रूप बड़ा सुन्दर और उत्तम रूप है। अल्लाह ऐसे लोगों को बहुत पसन्द करता है। आख़िरत में इनसे अल्लाह ख़ुश होगा और इन्हें अपनी जन्नत में जगह देगा।

इबादत का दूसरा रूप इससे भी सुन्दर है। और वह यह कि मुसलमान अल्लाह के हुक्मों को बड़े शौक़ और प्रेम के साथ करता है। उसे अल्लाह को ख़ुश करने की एक धुन होती है और वह इस धुन और लग्न में ऐसा बढ़-बढ़कर अल्लाह की ख़ुशी के काम करता है कि अपनी जान की भी परवाह नहीं करता बल्कि वह यह शौक़ रखता है कि उसकी जान और उसका माल सब अल्लाह के दीन के काम आ जाये।

यह बात मेहनत और ध्यान देने पर अपने अन्दर पैदा की जा सकती है। नमाज़, क़ुरआन और बार-बार अल्लाह की तारीफ़ वाले बोल सोच समझकर ज़बान से अदा करते रहने से यह उमंग पैदा होती है लेकिन हज की इबादत इसलिये बड़े फ़ायदे की है। खासतौर पर मदीना मुनव्वरा जाने से शौक़ और प्रेम दोनों बढ़ते हैं लेकिन फिर हम वही बात दुहरायें और याद दिलायेंगे कि मदीने जाकर आप यह सोचें कि नबी स० ने सहाबा रज़ि० को किस काम के लिए तैयार किया था और उन्होंने नबी स० के हुक्मों पर किस तरह अपनी जानें निछावर कीं। उसी तरह हमें भी करना है।

दुख की बात तो यही है कि आज हमारे अन्दर से यही बात निकल गई है। इसीलिये हमारा हज भी वह हज नहीं होता जो

हमारी ज़िन्दगी को सँवार दे। आज हज करने से न ही हाजियों की ज़िन्दगी में इन्क़लाब आता है और न उन पर असर पड़ता है जो हाजी से कोई मामला करते हैं बल्कि लोग उलटा ही असर लेते हैं। यह बात हमारे लिए सोचने की है।

अख़लाक़

पिछले इस्लामी अक़ीदों और इस्लामी इबादतों के बारे में आप पूरी बातसमझ चुके। अक़ीदों और इबादतों के बाद इस्लाम में अख़लाक़ का नम्बर है। अक़ीदों की मज़बूती और इबादतों के सोच समझकर करने के बाद इस्लाम यह देखना चाहता है कि इन्सान अच्छे अख़लाक़ वाला हो यानी उसकी आदतें, उसकी बातें, उसके मिलने जुलने का ढंग और उसके आचार विचार आदि ऐसे हों जिन्हें देखकर लोग ख़ुश हों और उन्हें पसन्द करें। नबी स० ने फ़रमाया—"तुममें सबसे अच्छा वह है जिसके अख़लाक़ सबसे अच्छे हों।" (बुख़ारी)

एक और हदीस में है कि :—

"क़ियामत की तराज़ू में अच्छे अख़लाक़ से ज़्यादा भारी कोई चीज़ न होगी। अच्छे अख़लाक़ वाला अपने अच्छे अख़-लाक़ से सदा के रोज़ादार और नमाज़ी की बराबरी पा सकता है।" (तिर्मिज़ी)

नीचे हम कुछ अख़लाक़ी बातों के बारे में लिखते हैं। मुसलमानों को चाहिये कि वे ये बातें अपनायें और अच्छे व सच्चे मुसलमान बनें।

सच्चाई

इन्सान में जो अच्छे गुण और अच्छी आदतें होती हैं, उनमें सच्चाई सबसे बढ़कर है। इन्सान में बहुत सी अच्छाइयाँ सच्चाई की वदौलत ही पैदा होती और जड़ पकड़ती हैं। दुनिया में जितने नेक बन्दे हुए हैं, उनमें सबसे पहले इसी सच्चाई ने जड़ पकड़ी।

देखा जाता है कि आम तौर पर ज़बान की सच्चाई ही को सच्चाई कहा जाता है लेकिन इस्लाम में इसका मतलब इससे कहीं ज़्यादा है। ज़बान के साथ दिल की और अमल (कर्म) की सच्चाई भी शामिल है। एक बार नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फ़रमाया :—

"किसी बन्दे का ईमान पूरा न होगा जब तक वह झूठ को हर तरह से न छोड़ दे, यहाँ तक कि मज़ाक़ और झगड़े में भी। भले ही वह अपना हक़ रखता हो।"

कभी ऐसा भी होता है कि इन्सान ज़बान से तो एक सच्ची बात कहता रहता है पर उसका अपना मन इस बात पर नहीं जमता। मुसलमान में यह बात भी होनी चाहिये कि जो कुछ उसकी ज़बान पर हो, वही उसके मन में हो। फिर यह कि वह जो काम करता है, वह काम उसकी सच्चाई की गवाही देता है। मतलब यह हुआ कि मुसलमान जो कुछ ज़बान से कहता है, वही उसका दिल भी कहता है और उसके काम उसकी ज़बान के मुताबिक़ होते हैं। इस्लाम में सच्चाई ज़बान, मन और कर्म

तीनों के संयोग का नाम है। मुसलमान को चाहिये कि सच्चाई की ये सभी बातें अपनायें।

नेक चलनी

नेक चलनी मुसलमान का दूसरा बड़ा गुण है। नेक चलनी का मतलब यह है कि मनुष्य का चाल चलन अच्छा हो। वह शर्मीला और हयादार हो और किसी औरत की तरफ़ बुरी नज़र से न देखे और न ही औरत मर्द को बुरी नीयत से देखे। क़ुरआन पाक में जहाँ मोमिनों के गुण बताये गये हैं, वहाँ यह बात साफ़-साफ़ कह दी गई है कि मोमिन अपनी रानों की बीच की पूरी हिफ़ाजत (रक्षा) करने वाला होता है। मोमिन उसी बात की तरफ़ बढ़ता है जो हलाल और जाइज़ हो। वह किसी से हराम और नाजायज़ ताल्लुक़ नहीं रखता। नबी सल्लल्लाहु अलैहिव-सल्लम ने बदकारी से बचने वालों को जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनाई है। फ़रमाया :—"जो मुझसे दो जबड़ों और दोनों रानों के बीच वाली चीज़ की ज़मानत करता है ? मैं उसके लिए जन्नत की ज़मानत करता हूँ।"

बदकारी, बदचलनी और हरामकारी को रोकने के बारे में इस्लामी क़ानून में बड़े कड़े हुक्म हैं। इस्लाम ने बदकारी की तरफ़ ले जाने वाले सारे ही रास्तों को बन्द कर दिया है। हुक्म है कि नज़रों को नीचा रखो, नामहरम (ग़ैर) मर्द औरतें अलग अलग रहें। इसी तरह परदे का हुक्म है। नाच गाने से रोका गया है। तस्वीर बनाने पर पाबन्दी लगा दी है। गंदी बातों के

फैलाने वालों को सज़ा देने का हुक्म है। गन्दी कविता और ऐसी ही कहानियाँ लिखने और फैलाने को बहुत बड़ी बुराई बताया गया है।

ये और ऐसे बहुत से हुक्म हैं, जिनके मुताबिक़ जीवन बिताने से बदचलनी दूर हो सकती है और ये हुक्म इसीलिये हैं कि बदकारी के छोटे से छोटे दरवाज़ों को बन्द कर दिया जाये।

अमानतदारी

अमानतदारी का यह मतलब तो सभी जानते हैं कि अगर कोई आदमी किसी के पास कोई चीज़ रख दे और वह उसके माँगने पर उस चीज़ को वैसी की वैसी ही उसे लौटा दे। अगर ऐसा न करे तो ख़यानत होगी लेकिन इस्लाम में अमानत का मतलब इतना ही नहीं है। इस्लाम की शिक्षा यह है कि अगर किसी का हक़ तुम पर आता है तो उसका अदा करना भी अमानत है। कोई आप से मश्वरा माँगे तो अपनी समझ के मुताबिक़ मश्वरा देना भी अमानत है। अगर किसी का कोई भेद आपको मालूम है तो उसका छुपाना भी अमानत है। नौकरी[1] के शराइत के मुताबिक़ ज़िम्मेदारी के साथ काम करना भी अमानत है। नौकरी के लिये जो वक़्त दिया गया है, उस वक्त को टालना, काम में सुस्ती करना, वक़्त से पहले चले जाना और जो वक्त

१. यहाँ सिर्फ़ हलाल और जाइज़ नौकरी के लिये कहा गया है। हराम और नाजाइज़ नौकरी कितनी ही अमानतदारी के साथ की जाये, वह हराम और नाजाइज़ ही रहती है।

नौकरी पर जाने का है, उसके बाद जाना अमानत के ख़िलाफ़ है।

नबी स० ने मुसलमानों को अमानत के बारे में बड़ी ताक़ीद की है। आपने यह तक फ़रमा दिया कि "जिसमें अमानत नहीं उसमें ईमान नहीं।"

अब सोचिये,. मुसलमान के लिये अमानतदारी कितनी ज़रूरी बात हो गई। यह तो मुसलमान की पहचान है। दूसरी हदीसों में आता है कि अस्ली मुसलमान वही है जो अपने तमाम मुआमिलात में सच्चा हो, ईमानदार हो, अमानतदार हो और वायदे का पक्का हो। किसी का हक़ मार लेना, वायदा करके पूरा न करना, झूठ बोलना या झूठी गवाही देना ये सब मुनाफ़िक़ों में होती हैं। ऐसे काम वही लोग करते हैं, जिनके दिल में सच्चा ईमान नहीं होता और जो आख़िरत का डर नहीं रखते। मुसलमान तो वही है जो अमानतदार है।

शर्म और हया

शर्म और हया भी मुसलमान का एक बड़ा गुण है। शर्म और हया इन्सान में घटती-बढ़ती रहती है। अच्छे लोगों के पास बैठिये-उठिये तो यह गुण बढ़ता है। बुरे लोगों में पड़कर यह गुण बाक़ी नहीं रहता। इस्लाम इस गुण को मुसलमान में ज़्यादा से ज़्यादा देखना चाहता है। नबी स० ने फ़रमाया कि हर धर्म की एक ख़ास आदत है। इस्लाम की एक ख़ास आदत हया है। हुज़ूर स० ने एक और हदीस में फ़रमाया "हया भी ईमान की एक शाख़ (टहनी) है।"

माफ़ी (क्षमा कर देना)

दूसरों की भूल-चूक और ख़ताओं को माफ़ कर देना एक बहुत बड़ा गुण है। इस्लाम ने इस गुण को ख़ूब उजागर किया है। क़ुरआन में जगह-जगह यह बात मिलती है कि अगर हम लोगों को माफ़ करेंगे तो अल्लाह हमारे गुनाहों को माफ़ करेगा। यह बात उन लोगों में ज़्यादा से ज़्यादा होना चाहिये जो अल्लाह का दीन फैलाना चाहते हैं। दूसरों की भूल-चूक माफ़ करने से इन्सान का दिल बढ़ता है और इन्सान के मन को शान्ति मिलती है। यह अल्लाह के भक्तों (मुत्तक़ियों) की ख़ास पहचान है। ग़ुस्से को रोकना, बदला लेने की ताक़त रखने पर भी माफ़ कर देना बड़ी हिम्मत और बहादुरी का काम है और अल्लाह इसको बहुत पसन्द करता है। अगर यह काम इस्लाम के प्रचार करने में किया जाये तो इससे इन्सान का मर्तबा बुलंद होता है। अपने ग़ुस्से की आग बुझाने और अपने दिल को ख़ुश करने के लिये बदला लेने को शैतानी काम कहा गया है। मुसलमान को चाहिये कि वह दूसरों को माफ़ करने की आदत ज़्यादा से ज़्यादा अपने अन्दर डाले।

मीठी बात

बातचीत करते वक़्त दूसरे की इज़्ज़त का ख़्याल रखना और हर बात इस तरह कहना कि सुनने वालों का दिल ख़ुश हो जाये, मोमिन के गुणों में से बड़ा गुण है। कोई ऐसी बात

कहना, जिससे किसी की हतक हो या किसी को बुरे नाम से पुकारना या किसी को नीचा दिखाने के लिए कुछ कहना मोमिन का काम नहीं। नबी स० ने फ़रमाया कि "मुसलमान न तो कटु वचन कहता है, न किसी पर फ़िटकार (लानत) करता है और न बुरी बात ज़बान से निकालता है और न गालियाँ बकता है। एक बार फ़रमाया अच्छी बात सदक़ा है। अगर तुम अपने भाई को देखकर मुस्करा दो तो यह भी सदक़ा है।"

अच्छी आदतों में से हमने कुछ के बारे में ऊपर लिखा है। इस्लाम सारी ही अच्छी आदतों को अपनाने की ताकीद करता है। मोमिन को सभी अच्छी बातें अपनाना चाहिये। इस्लामी अख़लाक़ में बहुत सी बातें हैं। हम उन सबको यहाँ लिखें तो दफ़्तर के दफ़्तर लिखना पड़ जायेंगे। हाँ, कुछ और अच्छे गुणों का नाम लिखे देते हैं :—

नम्रता, दान पुण्य करना, वीरता, तरस खाना, न्याय आदि। ये और ऐसी ही और बहुत सी बातें हैं, जिनके बारे में इस्लाम हमें ध्यान दिलाता है। साथ ही बुरी आदतें चुन-चुन कर मुसलमान के अन्दर से निकालना चाहता है। ये बुरी आदतें भी बहुत हैं पर हम कुछ बड़ी बुरी आदतों के बारे में यहाँ लिखते हैं।

घमंड

दूसरों के मुक़ाबिले में अपनी बड़ाई जताना बहुत बुरी बात है। इसी को तो घमण्ड कहते हैं। बड़ाई सिर्फ़ अल्लाह के

लिये है। अल्लाह किसी घमण्डी को पसन्द नहीं करता। शैतान के बारे में आपने सुना होगा कि उसने आदम के मुक़ाबिले में घमण्ड किया था। इसीलिए उसने अल्लाह का हुक्म टाला और सदा के लिये लानती हो गया। मोमिन के दिल में ज़रा भी घमंड न होना चाहिये। मोमिन की चाल में अकड़फ़ू नहीं होती। वह शेख़ी मारने वाला नहीं होता। वह चिल्ला-चिल्लाकर ऊँची आवाज़ से बातें नहीं करता लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मोमिन ख़ुशामदी और बेचारा होता है। वह सिर्फ़ ख़ुदा से डरता है। ख़ुदा ही के डर से वह घमण्ड नहीं करता और न शेख़ी के मारे किसी का दिल दुखाता है।

ग़ीबत और हँसी उड़ाना

ग़ीबत का मतलब है कि किसी की पीठ पीछे बुराई करना। किसी की पीठ पीछे बुराई करने और दूसरों की हँसी उड़ाने से आपस का मेल-जोल टूटता है। इस्लाम इसको पसन्द नहीं करता कि मोमिन के दिल में किसी दूसरे मोमिन की तरफ़ से नफ़रत भरी हो। इस्लाम में इस बुरी आदत से बचने के लिये बड़े सख़्त हुक्म हैं। सूरः हुजरात के दूसरे रुकू में है कि :—

يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا
يَسْخَرْ قَوْمٌ مِّنْ قَوْمٍ عَسَىٰ
أَنْ يَكُونُوا خَيْرًا مِّنْهُمْ
وَلَا نِسَاءٌ مِّنْ نِّسَاءٍ
عَسَىٰ أَنْ يَكُنَّ خَيْرًا
مِّنْهُنَّ ۖ وَلَا تَلْمِزُوا أَنْفُسَكُمْ
وَلَا تَنَابَزُوا بِالْأَلْقَابِ ۖ
بِئْسَ الِاسْمُ الْفُسُوقُ
بَعْدَ الْإِيمَانِ ۚ وَمَنْ لَّمْ
يَتُبْ فَأُولَٰئِكَ هُمُ
الظَّالِمُونَ ۝ يَا أَيُّهَا الَّذِينَ
آمَنُوا اجْتَنِبُوا كَثِيرًا
مِّنَ الظَّنِّ إِنَّ بَعْضَ
الظَّنِّ إِثْمٌ وَّلَا تَجَسَّسُوا

"मुसलमानों ! मर्द मर्दों की हँसी न उड़ायें कहीं ऐसा न हो। कि (जिनकी हँसी उड़ाई जाये वे अल्लाह के नज़दीक) उनसे अच्छे हों (जो हँसी उड़ाते हैं। इसी तरह) न औरतें, औरतों पर हँसें। हो सकता है कि (जिन पर वे हँसें, अल्लाह के नज़दीक) वे खुद उनसे अच्छी हों। आपस में एक दूसरे पर बातें न मारो, न एक दूसरे के नाम धरो। ईमान लाने के बाद बदतमीज़ी का नाम ही बुरा है। और जो कोई इन बुराइयों को न छोड़े, वही ज़ालिम है। मुसलमानो ! एक दूसरे के बारे में बदगुमानी से बचो क्योंकि

وَلَا يَغْتَبْ بَّعْضُكُمْ بَعْضًا ۭ اَيُحِبُّ اَحَدُكُمْ اَنْ يَّاْكُلَ لَحْمَ اَخِيْهِ مَيْتًا فَكَرِهْتُمُوْهُ ۭ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ تَوَّابٌ رَّحِيْمٌ ۝

(سورة حجرات رکوع ۲)

बहुत से गुमान पाप हैं, और एक दूसरे की टोह में भी न रहो और न तुममें से एक को एक पीठ पीछे बुरा कहे। क्या तुममें से कोई इस बात को पसन्द करेगा कि वह अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाये तो तुमको घिन आये। अल्लाह की नाफ़रमानी से बचो। बेशक अल्लाह तौबा क़बूल करने वाला और रहम करनेवाला है।"

देखिये, आपस के मेल जोल को ख़राब करने वाली बातों को कितनी सख़्ती से रोका गया है। किसी को तुच्छ और नीच समझना, उसकी हँसी उड़ाना, उस पर बातें मारना, नाम धरना बदतमीज़ी की बात मुँह से निकालना, दूसरों के बारे में बद-गुमानी करना, किसी की टोह में रहना, पीठ पीछे किसी को बुरा कहना, ये सारी बातें इतनी बुरी हैं कि मोमिन में नहीं होनी चाहिये। ख़ास तौर पर ग़ीबत बड़ी ही गन्दी आदत है और बहुत बड़ा पाप है। ज़रा ध्यान दीजिये कि अल्लाह तआला ने इस बुराई की मिसाल कैसी सख़्त दी है। मुसलमानों में आजकल यह रोग बहुत बढ़ गया है। मुसलमानों को इस पाप से बचना चाहिये।

और बहुत सी बुरी बातें हैं, जिनसे बचने के लिये क़ुरआन

और हदीस में ताकीदें मिलती हैं। इनमें से बड़ी-बड़ी ये हैं:—

झूठ बोलना, वायदा करके उसे पूरा न करना, धोखा देना, तुहमत लगाना, चापलूसी करना, कंजूसी, लालच, बेईमानी, चोरी, नापतोल में कमी करना, रिश्वत (घूस) लेना, और देना, ब्याज लेना और देना, शराब पीना, गुस्सा करना, किसी को देखकर जलना, इतराना, दिखावे के लिए काम करना और बेकार पैसा खर्च करना आदि। मोमिन की जिन्दगी इन सारे ऐबों से पाक होना चाहिये। मोमिन दुनिया में नेकी का प्रचारक है। नेकी फैलाना और बुराई मिटाना उसका काम है। अगर वह खुद इन बुरी आदतों में फंसा है तो बुराइयों से लड़ने के लिये अल्लाह का सिपाही कैसे बन सकता है।

हुकूक

जिस शख्स या जिस चीज़ से आप कोई फ़ायदा उठायें, उसकी हिफ़ाज़त (रक्षा) करना और उसकी तरक्क़ी की कोशिश करना आपका कर्तव्य है। यही उस शख्स या उस चीज़ का आप पर हक़ है। इन्सान का सम्बन्ध इस दुनिया की एक-एक चीज़ से है। किसी से कम किसी से ज्यादा। इसलिये एक एक चीज़ का उस पर हक़ है। किसी का कम, किसी का ज्यादा। ये हुक़ूक़ इन्सानों, जानवरों और बेजान चीज़ों, सभी के हैं। अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से जो चीज़ें हमारे लिए पैदा की हैं, उनका हम पर हक़ है। हमें चाहिये कि हम उन्हें ठीक-ठीक उसी तरह काम में लायें, जिस तरह अल्लाह की मरज़ी हो

और उनकी उसी तरह रक्षा और हिफ़ाज़त भी करना चाहिये। क़ुरआन में है :—

"वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हारे लिये हर उस चीज़ को पैदा किया जो ज़मीन में है" (सूर: बक़र: आयत १९)

هُوَ الَّذِیْ خَلَقَ لَکُمْ مَا فِی الْاَرْضِ جَمِیْعًا

(البقرہ۔آیت ۱۹)

इस्लाम इन सब हुक़ूक़ की देखभाल का हुक्म देता है। वह किसी का हक़ ज्यादा बताता है, किसी का कम।

माँ बाप का हक़

इन्सानों में सबसे ज्यादा हक़ माँ बाप का है। माँ का हक़ बाप से भी ज्यादा है। एक बार एक सहाबी (प्यारे नबी के प्यारे साथी) ने आप से पूछा "मैं सबसे ज्यादा किस के साथ भलाई करूं ?" हुज़ूर ने फ़रमाया "अपनी माँ से।" फिर पूछा इसके बाद ?" फ़रमाया "अपनी माँ से" उसने फिर पूछा "फिर किस से ?" आपने फिर फ़रमाया "अपनी माँ से।" तीन बार आपने यही जवाब दिया। चौथी बार पूछने पर फ़रमाया "अपने बाप से।"

एक बार फ़रमाया "तुम्हारे ख़ुदा ने तुम्हारी माओं की नाफ़रमानी (हुक्म न मानना) तुम पर हराम की है। माँ बाप की नाफ़रमानी सिर्फ़ उसी वक़्त की जा सकती है, जब वे कोई ऐसा काम करने को कहें, जिसमें अल्लाह की नाफ़रमानी हो।

इसके सिवा और किसी तरह भी उनके हुक्म को टाला नहीं जा सकता। हद यह है कि अगर किसी के माँ बाप काफ़िर और मुश्रिक हों, उस वक़्त भी उनके साथ अच्छा बरताव करना पड़ेगा। हाँ, उनकी कोई ऐसी बात नहीं मानी जायेगी, जो अल्लाह के दीन के ख़िलाफ़ हो। क़ुरआन पाक और हदीस शरीफ़ में माँ बाप की सेवा, उनकी मदद और उनका हुक्म मानने की बड़ी ताकीद आई है। उनकी ख़ुशी के लिये अपना आराम, अपनी पसन्द और अपनी चाह सब कुछ क़ुरबान (त्याग) कर देने का हुक्म है। हाँ, अगर उनकी ख़ुशी अल्लाह की ख़ुशी से टकरा जाये तो फिर उनकी ख़ुशी और उनके हुक्म को टाल देना ही नेकी है। एक बार नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया "तीन प्रकार के आदमी हैं जिनकी ओर अल्लाह तआला क़ियामत के दिन रहमत की नज़र से न देखेगा उनमें से एक प्रकार के लोग वे हैं, जो माँ बाप की नाफ़रमानी करते हैं।

औलाद के हुकूक

जिस तरह माँ बाप के हक़ औलाद पर हैं, उसी तरह औलाद के हक़ माँ बाप पर भी हैं। औलाद का सबसे बड़ा हक़ यह है कि माँ बाप उनके शरीर (जिस्म) और उनकी आत्मा को बाक़ी रखने और तरक़्क़ी देने का इन्तज़ाम करें यानी शरीर (जिस्म) को बाक़ी रखने के लिये औलाद के खाने पीने का इन्तज़ाम करें, कपड़े लत्ते का बन्दुवस्त करें, गर्मी और जाड़े

से बचाने की फ़िक्र रखें और जब औलाद में से कोई बीमार पड़ जाये तो उसकी दवादारू करें। आत्मा की देखभाल का अर्थ यह है कि बुराइयों से बचाया जाये और नेकियों की ओर उनका ध्यान लगाया जाये। जहाँ तक जिस्मानी ज़िन्दगी का ताल्लुक़ है, लोग इसकी तरफ़ ध्यान देते हैं। यह काम तो जानवर भी अपने बच्चों के साथ करते हैं। ऐसे ज़ालिम जो अपनी औलाद को मार डालें, बहुत कम हैं लेकिन ऐसे नादान जो औलाद की पैदाइश रोकने को बड़ी समझदारी का काम समझते हैं, बहुत होते जा रहे हैं। इस्लाम इस काम को बड़ा ही पाप समझता है।

औलाद का वह हक़ जो आमतौर से लोग अदा नही करते वह है, उनकी आत्मा को संवारना। अल्लाह तआला ने मुसलमानो पर फ़र्ज़ किया है कि वे अपनी औलाद को इस्लामी शिक्षा दें। और उनके चाल-चलन को अच्छा बनाये ताकि वे इस तरह जीवन बितायें, कि कल क़ियामत के दिन उन्हें अल्लाह की नाफ़रमानी के कारण जहन्नम का ईंधन न बनना पड़े। क़ुरआन में है :—

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا قُوا أَنفُسَكُمْ وَأَهْلِيكُمْ نَارًا

(التحريم آيت - ٦)

"ऐ मुसलमानों ! अपने आपको और अपनी औलाद को जहन्नम की आग से बचाओ। (सूरः अलहरीम आयत ६)

जिस किसी को यह यक़ीन हो कि क़ियामत होने वाली है।

वहाँ इन्सान से उसकी नेकी और बदी का हिसाब लिया जायेगा। नेक लोगों को जन्नत दी जायेगी और अल्लाह के नाफ़रमानों को जहन्नम में जलना पड़ेगा, वह यह कैसे देख सकेगा कि उसके प्यारे बच्चे उस दिन जहन्नम में झोंक दिये जायें। कौन माँ बाप ऐसें होंगे, जो किसी आने वाली मुसीबत से अपनी औलाद को बचाने की कोशिश न करें। मुसीबत तो अलग रही, मुसीबत के ख़्याल से लोग अपनी औलाद को उससे बचाने के लिये तरह-तरह के उपाय करते हैं इसीलिये एक मोमिन, जो यह जानता है कि अल्लाह के हुक्मों को टालने का यह फल है, पूरी कोशिश करता है कि उसकी औलाद अल्लाह की बाग़ी बन कर न उठे। यह ध्यान आते ही वह काँप जाता है कि आज जो बच्चे उसे अपनी जान से ज़्यादा प्यारे हैं, वे कल अल्लाह की भड़काई हुई आग में भूने जायें। फिर इतना ही नहीं बल्कि वह यह भी जानता है कि अगर उसने औलाद के इस हक़ को ठीक-ठीक अदा न किया और उसकी औलाद उसकी कोशिश न करने से अल्लाह के अज़ाब में फंसी, तो ख़ुद उसे इस कोशिश न करने का जवाब देना होगा। औलाद अल्लाह की अमानत है। आपके लिये एक परीक्षा है क़ियामत में अल्लाह के सामने आपको जवाब देना होगा कि आपने उसकी इस अमानत का हक़ किस तरह अदा किया ? उसके जो बन्दे आपकी निगरानी में दिये गये थे, आपने उन्हें अल्लाह का बन्दा बनाने की कहाँ तक कोशिश की ? अगर वह आपकी बेपरवाही से या आप की ग़लत शिक्षा से सीधे रास्ते पर न रही, अल्लाह को भूल गई और उसके दीन को छोड़ कर किसी और रास्ते पर लग गई तो जहाँ तक

आपकी ज़िम्मेदारी है, आपको अपनी ग़लती का फल भुगतना पड़ेगा और उसके बिगाड़ से दुनिया में जितना बिगाड़ भी फैला होगा, उस सब में आपका भी हिस्सा होगा। नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फरमाया :—

"बाप की तरफ़ से औलाद के लिये इससे बेहतर देन नहीं कि वह उनको नेकी और भलाई की शिक्षा दे।"

मियाँ बीवी के हुकूक

मियाँ बीबी का सम्बन्ध इस्लाम में बहुत बड़ा और बड़ा ही पाक व पवित्र सम्बन्ध है। इस्लाम का पूरा समाजी प्रबन्ध ख़ानदान की बुनियाद पर क़ायम है और ख़ानदान मियाँ-बीवी के सम्बन्ध से पैदा होता है। ख़ानदान का निज़ाम (रखरखाव) जितना अच्छा होगा, समाजी निज़ाम में उतनी अच्छाइयाँ पैदा हो सकेंगी। इस्लाम ने ख़ानदान के सुधार और उसकी मज़बूती के लिये बड़े फैलाव के साथ हुक्म दिये हैं। इस्लाम चाहता है कि हर खानदान मेल मुहब्बत और प्रेम से रहे। सब में एक दूसरे से हमदर्दी हो। ख़ुशी-ख़ुशी एक दूसरे से सम्बन्ध रखें। इस बारे में इस्लाम के हुक्म बड़े फैलाव के साथ है लेकिन हम यहाँ कम से कम शब्दों में लिखने की कोशिश करेंगे।

(१) यह ज़िम्मेदारी शौहर पर है कि वह ख़ानदान की जरूरतों के लिये खाने पीने का बन्दुबस्त करे। ख़ानदान की अख़लाकी तालीम और उसके सुधार का मुनासिब इन्तज़ाम करे इसके अलावा अल्लाह ने बीवी बच्चों के और जो हुक़ूक़ रखे

हैं, उन्हें भी अदा करे। बीवी के साथ बड़े प्रेम के साथ रहे और अच्छा बरताव करे। क़ुरआन में है :—

"बीवियों के साथ अच्छे बरताव के साथ मिलो।" وَعَاشِرُوهُنَّ بِالْمَعْرُوفِ۔

(निसाअ आयत १९)। (النساء آیت ۱۹)

आख़िरी हज के मौक़े पर हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया "मैं तुमको औरतों के साथ अच्छे बरताव की नसीहत करता हूँ। तुम मेरी इस नसीहत को याद रखना। देखो, वे तुम्हारी निगरानी में और तुम्हारे बस में हैं।"

(२) बीवियों का कर्तव्य है कि वे शौहर का भला चाहें। हर जाइज़ बात में उसका कहना करें और उनकी किसी अमानत में कोई ख़यानत न करें। अल्लाह तआला फ़रमाता है :

"नेक औरतें (शौहर की) ताबेदार होती हैं। जब शौहर मौजूद नहीं होता तो उसकी अमानत की हिफ़ाज़त करती हैं।" فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ۔

(النساء آیت ۳۴)

नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने औरतों को बार बार ताकीद फ़रमाई है कि वे अपने अपने शौहर के हक़ अदा करें। एक बार फ़रमाया :—

"उसकी क़सम है, जिसके बस में मुहम्मद की जान है, कोई औरत अल्लाह का हक़ उस वक़्त तक अदा नहीं कर सकती, जब तक कि अपने शौहर का हक़ अदा न करे।"

नातेदारों के हुकूक

इस्लाम ने नातेदारों के साथ अच्छा बरताव करने और उनके हुक़ूक़ अदा करने की बड़ी ताकीद की हैं। क़ुरआन पाक में नातेदारों के हुक़ूक़ अदा करने का हुक्म बार-बार दिया गया है और नबी स० ने भी नातेदारों के बारे में ध्यान दिलाया है। आपने फ़रमाथा :

"जिसको यह पसन्द हो कि उसकी रोज़ी ज़्यादा और उस की उम्र में वरकत हो तो उसे चाहिये कि खानदान वालों के साथ अच्छा बरताव करे।"

आपने यह भी फ़रमाया कि "अगर कोई नातेदार तुम्हारे हक़ अदा न भी करे तो भी तुम उसके हुक़ूक़ अदा करने में कमी न करो।

एक और हदीस में है कि "तुम्हारा जो क़रीबी नातेदार तुम से सम्बन्ध न रखे और बे मुरव्वती भी बरते और नातेदारी का हक़ भी अदा न करे, तुम उससे भी सम्बन्ध रखो। तुम अपनी तरफ़ से उसकी नातेदारी का हक़ अदा करते रहो।

हुकूक की अहमियत

आपने अन्दाज़ा किया होगा कि इस्लाम इन्सान को उसकी अपनी ही नेकियों के लिये तैयार नहीं करता बल्कि वह चाहता है कि मुसलमानों का पूरा गिरोह नेकी का नमूना हो। यह काम उस वक़्त तक हो नहीं सकता जब तक कि इस्लामी गिरोह के

एक-एक आदमी का दिल एक दूसरे से जुड़ा हुआ न हो। जिस गिरोह के लोगों के दिलों में एक दूसरे की मुहब्बत और एक दूसरे से लगाव न हो, वह गिरोह मिलजुल कर न किसी नेकी को फैला सकता है और न वह दूसरों के लिए भलाई का नमूना बन सकता है। इसी लिये इस्लाम पहले उन तमाम सम्बन्धों को मज़बूत करता है जो ख़ून के रिश्ते की बुनियाद पर होते हैं लेकिन इस रिश्ते नाते को इस्लाम ख़ून, नस्ल (वंश) और ख़ानदान के नाम पर मज़बूत नहीं बनाता बल्कि इन सारे रिश्तों को मज़बूत करने के लिये इस्लाम अल्लाह की ख़ुशी और उसके हुक्मों के मुताबिक़ काम करने पर ध्यान दिलाता है। अगर किसी मौक़े पर इन हक़दारों के हक़ अल्लाह की ताबेदारी में रुकावट बनते हैं तो यह हुक्म मिलता है कि इन्हें हरगिज़ न अदा किया जाये। इस वक़्त न माँ बाप की ताबेदारी ज़रूरी होती है, न औलाद की खिदमत। न मियाँ बीवी का साथ दे सकता है और न बीवी मियाँ का कहना मान सकती है। मतलब यह कि कोई रिश्ता नाता मोमिन को हक़ की राह (ख़ुदा की ताबेदारी) से नहीं रोक सकता।

हुक़ूक़ का फैलाव

रिश्तेदारों और नातेदारों के हुक़ूक़ से आगे बढ़कर इस्लाम ने पड़ोसियों, मेहमानों, बीमारों, कमज़ोरों, मुहताजों और सारे मुसलमानों का हक़ रखा है। इनमें से हर एक के हुक़ूक़ का फैलाव शरीअत में मिलता है। ख़ास कर पड़ोसी के हक़ पर तो

बहुत ही ज़ोर दिया गया है। क़ुरआन पाक और हदीस में पड़ो-सियों के बारे में खुले-खुले हुक्म मिलते हैं। इस बारे में नबी स० के बहुत से आदेशों में से कुछ ये हैं :—

"जो कोई ख़ुदा और आख़िरत पर ईमान रखता हो, वह अपने पड़ोसी को कोई दुख और तकलीफ़ न दे।"

"वह मुसलमान नहीं, जो ख़ुद तो पेट भर कर खाले और उसका पड़ोसी भूखा रहे।"

"वह मोमिन नहीं जिसका पड़ोसी उसकी शरारतों से बचा न रहे।"

आपस में एक दूसरे के हुक़ूक़ की देखभाल दरअसल पूरी इस्लामी जमाअत की मज़बूती की जान है। इसके बिना जमाअत के लोग मिलजुल कर किसी बड़े काम को कर ही नहीं सकते।"

इस्लाम एक ऐसी जमाअत बनाना चाहता है, जिसका काम ही यह है कि वह अल्लाह का कलमा फैलाये और दुनिया से अधर्म, फ़साद और बुराई को दूर करे। इसलिये ज़रूरी है कि यह जमाअत ज़्यादा से ज्यादा मज़बूत हो और उसके लोग आपस में एक दूसरे से बिल्कुल ऐसे मिले हों जैसे किसी मज़बूत दीवार की ईंटें आपस में मिली होती हैं।

आम इन्सानों के हुक़ूक़

हुक़ूक़ के मामले में इस्लाम दूसरे धर्मों की तरह थोड़ दिल नहीं है। इस्लाम में जहाँ नातेदारों, पड़ोसियों और मुसलमानों

के हुक़ूक़ को भी भुलाया नहीं गया है। वहाँ आम इन्सानों के हुक़ूक़ को भी भुलाया नहीं गया है। इस्लाम यह सिखाता है कि सारे इन्सान हज़रत आदम की औलाद हैं। इस नाते सारे इन्सानों की एक बिरादरी है और एक पर दूसरे के हुक़ूक़ हैं। एक मुसलमान पर इन्सानी बिरादरी के नाते जो सबसे बड़ा फ़र्ज़ है, वह यह है कि वह उसे अल्लाह की नाख़ुशी और आख़िरत के अज़ाब से बचाने की पूरी-पूरी कोशिश करे। उसे यह देखकर बहुत दुख हो कि उसका भाई अपनी किसी भूल के कारण या ख़ुद उसकी सुस्ती से उन बातों को नहीं जानता, जिनके न जानने से उसकी सदा रहने वाली (आख़िरत की) ज़िन्दगी दुखी हो जायेगी और वह सदा के लिये अल्लाह की रहमत से दूर हो जायेगा। इन्सानों का भला चाहने के सिलसिले में यही सबसे पहला काम है।

इस सच्ची हमदर्दी के बाद भी जो लोग इसकी क़द्र न करें और मुसलमानों के बताने और समझाने पर भी ख़ुद अपनेको तबाह करने पर तुले हों, इस्लाम ऐसे नादानों के हुक़ूक़ को भी बाक़ी रखता है। ऐसे लोग अगर किसी हुकूमत में हों तो इस्लाम उन्हें हक़ देता है कि वे अपनी राह पर जमे रहें। अपने ख़ुदाओं को पूजते रहें, अपनी औलद ाको जो चाहें, शिक्षा दें। अपने माम-लात जिस तरह चाहें चलाते रहें! इस्लामी हुकूमत में उनकी जान, उनका माल और उनकी आबरू की उसी तरह देखभाल की जायेगी जिस तरह किसी मुसलमान की हो सकती है। इस्लामी हुकूमत इस बात की ज़िम्मेदार है कि उन्हें वे सारे हुक़ूक़ पूरे-पूरे मिलते रहें, जो इस्लाम ने उनके लिये मुक़र्रर कर दिये हैं

और जिन्हें कोई शख़्स उस वक़्त तक न रोक सकता है। और न कम कर सकता है, जब तक कि वह इस्लाम पर अमल करे लेकिन अगर इस्लामी हुकूमत क़ायम न हो, तब भी एक-एक मुसलमान पर इस इन्सानी बिरादरी के जो हुक़ूक़ हैं, वे बराबर अदा करना होंगे। इन हुक़ूक़ में से कुछ ये हैं।

(१) कोई मुसलमान इन्सानी ब्रिरादरी के किसी आदमी का दिल उसके धर्म या विचार की निन्दा करके नहीं दुखा सकता और न ज़िद में कोई ऐसा काम कर सकता है जो इन्साफ़ (न्याय) से दूर हो। अल्लाह तआला फ़रमाता है :—

"किसी क़ौम की दुश्मनी तुमको इस बात पर न उभारे कि तुम इन्साफ़ को हाथ से दे दो। तुम्हें हर हाल में इन्साफ़ ही करना चाहिये। यही बात तक़्वा से क़रीब है। (सूरः माइदः आयत ८)

وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ
قَوْمٍ عَلٰٓى اَنْ لَّا تَعْدِلُوْا ؕ
اِعْدِلُوْا هُوَ اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى ۔

(مائدہ آیت ۸)

(२) इन्सानी बिरादरी का कोई शख़्स अगर पड़ोस में रहता हो तो पड़ोसी होने के नाते उसका वही हक़ है जो किसी मुसलमान का है।

(३) हर इन्सान हमदर्दी और रहम का हक़दार है। नबी स० ने फ़रमाया :—

"तुम ज़मीन वालों पर रहम करो तो आसमान वाला तुम पर रहम करेगा।"

(४) दान-पुण्य से (ज़कात को छोड़कर) मुसलमानों के साथ-साथ इन्सानी बिरादरी के हर शख़्स की मदद की जा सकती है यदि वह उसका हक़दार भी हो।

राजनीति

इस्लाम पूरी ज़िन्दगी को ख़ुदा की ताबेदारी में दे देने का नाम है। इस्लाम के नज़दीक दीन और दुनिया, ज़िन्दगी के दो अलग-अलग हिस्से नहीं हैं कि एक हिस्से में तो ख़ुदा की मरज़ी पूरी की जाये और दूसरे हिस्से में अपनी मरज़ी या किसी और की मरज़ी पर चला जाये यही कारण है कि इस्लाम में राजनीति भी दीन ही का एक हिस्सा है। जो राजनीति इस्लाम की हिदायत से आज़ाद हो, वह मुसलमान की नज़र में बेदीनी का काम है।

दीन पर पूरी तरह चलने के लिये इस्लामी राजनीति को अच्छी तरह जान लेना ज़रूरी है ताकि हर उस राजनीति से बचा जा सके जो इस्लामी न हो।

इस्लामी राजनीति के नियम

(१) इस्लाम में हुक्म देने और क़ानून बनाने का हक़ न हो किसी एक इन्सान को है और न किसी मुल्क या किसी क़ौम के सारे लोगों को ही यह हक़ मिला है। सारी दुनिया के इन्सानों को मिलकर यह हक़ नहीं पहुँचता कि अपने लिये या दूसरों के

लिये कोई क़ानून बना सकें या अपना हुक्म चला सकें। इस सारी धरती पर किसी को यह हक़ नहीं पहुँचता कि वह हुक्म दे और दूसरे उसकी ताबेदारी करें। वह क़ानून बनाये और दूसरे उस पर चलें। यह अख़्तियार सिर्फ़ अल्लाह को है। क़ुर-आन में है :—

يَقُوْلُوْنَ هَلْ لَّنَا مِنَ الْاَمْرِ مِنْ شَيْءٍ قُلْ اِنَّ الْاَمْرَ كُلَّهٗ لِلّٰهِ۔

(آل عمران۔ ۱۵۴)

"वे पूछते हैं कि क्या अख़्तियारात में हमारा भी कुछ हिस्सा है। कहो कि अख़्तियारात तो सारे अल्लाह के हाथ में हैं। (आलि इमरान आयत १५४)।

सूरः नहल आयत ११६ में है :—

وَلَا تَقُوْلُوْا لِمَا تَصِفُ اَلْسِنَتُكُمُ الْكَذِبَ هٰذَا حَلٰلٌ وَّهٰذَا حَرَامٌ۔

(النحل۔ آیت ۱۱۶)

"अपनी ज़बान से यूंही झूठ-मूठ न कह दिया करो कि यह हलाल है और यह हराम।"

इस्लामी राजनीति में हुक्म देने का अस्ली हक़ केवल अल्लाह को है। क़ानून बनाना सिर्फ़ अल्लाह का काम है। कोई बड़े से बड़ा इन्सान चाहे वह नबी ही हो, अपने अख़्तियार और अपनी राय से न कोई हुक्म दे सकता है और न किसी काम को मना कर सकता है। ख़ुद नबी भी अल्लाह ही के हुक्मों पर

चलता है। दूसरे इन्सानों को जो नबी की ताबेदारी का हुक्म दिया जाता है तो वह भी इसलिए कि नबी जो कुछ हुक्म देता है, वह अल्लाह की तरफ़ से देता है।

इस्लाम में अल्लाह के सिवा किसी को यह हक़ नहीं पहुँचता कि वह अपने तौर पर हुक्म चलाये और बादशाही करे। चाहे वह किसी एक शख्स की बादशाही हो या किसी एक ख़ानदान की। इसी तरह इस्लाम किसी ख़ास गिरोह या मुल्क के सारे निवासियों की बादशाही को भी ठीक नहीं समझता।

इस्लामी राजनीति का दूसरा नियम यह है कि अल्लाह का क़ानून बन्दों तक उसके रसूलों द्वारा पहुँचता है। इसी नियम से अल्लाह के आख़िरी रसूल सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने जो क़ानून क़ुरआन पाक की शकल में दिया है और जिसमें अल्लाह ने ख़ुद क़ानून बयान कर दिया है, उसी क़ानून पर इस्लामी राजनीति को चलाया जाता है। नबी सल्लल्लाह अलैहिवसल्लम ने अपनी ज़िन्दगी में उसी क़ानून पर चलकर दिखा दिया इस तरह अल्लाह का क़ानून क़ुरआन और नबी स० की सुन्नत है यानी नबी स० ने जिस तरह उस क़ानून को बरता वही अस्ल इस्लामी दस्तूर (विधान) बन गया। इसी को इस्लामी शरीअत भी कहते हैं। इसलिए हर वह राजनीति जो इस्लामी शरीअत पर न हो, वह इस्लामी राजनीति नहीं ग़ैर इस्लामी है। चाहे उसके चलाने वाले और उसमें हिस्सा लेने वाले मुसलमान ही क्यों न हों।

इस्लामी राजनीति का तीसरा नियम ख़िलाफ़त है। ख़िलाफ़त का मतलब यह है कि इस्लामी क़ानून को लागू करने और

उसे चलाने का काम अल्लाह् का नायब करे। अरबी भाषा में नायब को ख़लीफ़ा कहते हैं और क़ुरआन इन्सान को अल्लाह् का ख़लीफ़ा बताता है। अच्छा अब क़ुरआन, सुन्नत और ख़िलाफ़त तीनों नियमों को समझने के बाद पूरी बात यूँ बनी कि इस्लाम अस्ल हाकिम और बादशाह अल्लाह् को मानता है लेकिन इन्सान अल्लाह् का नायब है तो नायब होने के नाते इन्सान अल्लाह् के मुल्क में अल्लाह् ही के दिये अख़्तियारात को काम में लाता है।

इस नियम को समझ लेने के बाद बात बिल्कुल साफ़ हो जाती है। मुल्क अल्लाह् का है, किसी इन्सान या इन्सानों के किसी गिरोह् का नहीं। मुल्क का मालिक सिर्फ़ अल्लाह् है, इन्सान नहीं। इन्सान अल्लाह् का नायब है। इस नायब को हर काम उसी तरह् करना चाहिये जिस तरह् मालिक ने बता दिया है। नायब का काम यह् नहीं है कि वह् अपने मन माने हुक्म चलाये। नायब का काम यह् है कि वह् मालिक की मरज़ी के मुताबिक़ काम चलाता है। अस्ल मालिक (अल्लाह्) ने अपने नायब (इन्सान) को कुछ अख़्तियार सौंपे हैं और उनसे काम लेने के लिए एक ह्द भी मुक़र्रर कर दी। जो नायब मालिक को मालिक मानता है, और उस ह्द के अन्दर रह् कर ही काम करना चाहता है जो अस्ल मालिक ने मुक़र्रर कर दी है तो वही अल्लाह् का सच्चा नायब है और ऐसे सच्चे नायब को नायब बनाना ही चाहिए। इसी को नायब बनने का हक़ है। लेकिन अगर कोई शख़्स अस्ल मालिक को मालिक ही न माने या मालिक की मुक़र्रर की हुई ह्द को फाँद जाये तो वह् उसका

नायब नहीं, बाग़ी है। इसलिए इस्लामी राजनीति में ऐसे तमाम लोग जो उस सच्चे मालिक को न मानें और उसके दिये हुए अख़्तियारों को उसकी मरज़ी के मुताबिक़ काम में न लायें तो वे हाकिम व मालिक नहीं हैं बल्कि बादशाहों के बादशाह (अल्लाह) के बाग़ी और मुजरिम हैं चाहे वे कहने को अपने आपको मुसलमान ही कहते हों।

अब आप समझ सकते हैं कि इस्लामी राजनीति में हुकूमत करने और मुल्क के इन्तिज़ाम को सम्भालने का हक़ न तो किसी एक शख़्स का है न किसी ख़ानदान का और न किसी ख़ास गिरोह का बल्कि यह हक़ उन तमाम मुसलमानों को है, जो इस्लामी राजनीति के तीनों उसूलों को मानें और उन्हीं उसूलों के मुताबिक़ मुल्क का इन्तिज़ाम करने के लिए तय्यार हों। इन हुक़ूक़ में सारे ही इन्सान बराबर के शरीक हैं। कोई किसी से कम या ज़्यादा नहीं। इसलिए मुल्क के लिए जो हुकूमत बनाई जायेगी, वह ऐसे तमाम लोगों की राय से बनेगी और इस हुकूमत की ज़िम्मेदारी वही लोग संभालेंगे जिन पर ज़्यादा से ज़्यादा लोगों का भरोसा होगा। ये लोग अपनी राय से एक ऐसे शख़्श को चुन लेंगे जिसमें वे गुण ज़्यादा पाये जाते हों, जो इस्लाम ऐसे शख़्स में ज़्यादा देखना चाहता है। वह सबसे ज़्यादा नेक हो, अल्लाह से डरने वाला हो, उसके क़ानून को जानता हो और उन पर चलने के लिए तैयार हो। इस ज़िम्मेदारी के काम को चलाने की काबलियत रखता हो मगर ख़ुद इस उहदे का उम्मीदवार न हो। वह इस सेवा के लिए लालच, ख़ुदग़रज़ी

और लाभ उठाने के हर ख़्याल को छोड़कर सिर्फ़ अल्लाह को ख़ुश करने और आख़िरत की क़ामयाबी के लिए तैयार हो।

आजकल की ग़ैर इस्लामी राजनीति

आजकल कुछ ही मुल्क ऐसे हैं, जहाँ किसी शख़्स या किसी ख़ानदान को हाकिम और बादशाह माना जाता है। बाक़ी सारी दुनिया में कोई एक शख़्स या ख़ानदान की हुकूमत नहीं है। आज दुनिया के सभी देशों में क़ौमी राज है। क़ौम के लोग मुल्क के मालिक बने हुए हैं। क़ानून जैसा वे चाहते हैं बनाते हैं। वही क़ानून मुल्क में लागू होता है।जिसको मुल्क के ज़्यादा लोग पसन्द करें और जिसे वे पास कर दें। इस काम के लिए लोग अपने नुमाइन्दे (प्रतिनिधि) चुनते हैं और उन्हें अपनी ओर से यह हक़ देते हैं कि मुल्क के लिए क़ानून बनायें। ये लोग मुल्क की हुकूमत चलाने के ज़िम्मेदार होते हैं। और यही अपने मन माने क़ानून बनाते हैं, पास करते हैं और देश पर लागू करते हैं। इस तरीक़े को गणराज (जमहूरियत) कहते हैं।

जमहूरियत में जो कुछ होता है, वह दुनिया ने अच्छी तरह देख लिया। यह तरीक़ा बिल्कुल नाकाम (असफल) हो चुका है। इस तरीक़े से जो लोग चुने जाते हैं, वे बड़े चालाक और होशियार होते हैं। वे धन दौलत के बलबूते से या धौंस और धाँधली से वोट हासिल करते हैं। आम लोगों को इतनी समझ तो होती नहीं कि वे यह जान सकें कि चुनाव क्या बला है और किस तरह सचमुच चुनाव होना चाहिये और न उनके सामने

यह सवाल होता है कि वे मुल्क के इन्तिज़ाम के लिए भले और नेक लोगों को चुनें। यही कारण है कि जनता दिन पर दिन परेशान होती और भटकती जा रही है। यह तरीक़ा इस्लाम के बिल्कुल ख़िलाफ़ है बल्कि यह गणराज्य और ख़िलाफ़त एक दूसरे की ज़िद है। इस्लामी ख़िलाफ़त में मुल्क का अस्ल मालिक अल्लाह को माना गया है। गणराज्य (जमहूरियत) ने मुल्क के मालिक मुल्क के रहने वाले माने जाते हैं।

इस्लामी अक़ादा है कि हुक्म देने का हक़ अल्लाह को है। जमहूरियत सिखाती है कि हुक्म देने का हक़ जनता को है।

मुसलमान का अक़ीदा है कि क़ानून बनाना अल्लाह का हक़ है और उसने क़ानून बनाकर अपने रसूल पाक के ज़रिये भेज भी दिया है। जमहूरियत यह डींग मारती है कि नहीं, क़ानून बनाना उन लोगों का काम है जिनको जनता चुनती है।

मुसलमान का अक़ीदा है कि अल्लाह के क़ानून में घटाने-बढ़ाने और अदल-बदल करने का हक़ किसी को नहीं। जमहूरियत का कहना है कि नहीं, यह मुल्क के ज़्यादा लोगों की पसन्द और नापसन्द पर है। वे जब चाहें क़ानून बदल दें।

ये और ऐसी बहुत सी बुन्यादी बातें ऐसी हैं जिनके होते हुए आजकल जमहूरियत और इस्लामी राजनीति बिल्कुल अलग-अलग दो चीज़ें हैं। एक का दूसरी से कोई लगाव नहीं।

आजकल की जमहूरियत का एक तो वह तरीक़ा है जो अमरीका, बरतानिया और हमारे मुल्क में बरता जाता है और जिसे सरमायादाराना जमहूरियत कहते हैं। दूसरा तरीक़ा वह है जो रूस में चल रहा है और जिसे इश्तिराकी जमहूरियत

कहते हैं। बुनियादी तौर पर हुक्म देने और क़ानून बनाने में तो दोनों एक ही हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि अमरीका बरतानिया और उन जैसे दूसरे मुल्कों में हर शख़्स को उसकी कमाई हुई दौलत पर हर तरह का हक़ हासिल है कि वह उसे जिस तरह चाहे काम में लाये। चाहे तो वह अपनी दौलत को किसी काम में लगाये चाहे रख छोड़े। रूस कहता है कि नहीं, हर शख़्स की कमाई क़ौम की मिलकियत है और हर शख़्स को सिर्फ़ इतना मिलना चाहिये, जितना उसको आराम के साथ ज़िन्दगी बिताने के लिये काफ़ी हो। हम यहाँ इन दोनों तरीक़ों की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ नहीं बताते। यहाँ हम यह कह सकते हैं कि अपने नियम और राजनीति में दोनों एक हैं और दोनों ग़ैर-इस्लामी हैं।

मुसलमान के लिये, ऐसे मुसलमान के लिए जिसने अपनी पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह के दीन पर चलने का फ़ैसला किया हो, यह बात हरगिज़ दुरुस्त नहीं कि वह किसी ग़ैर-इस्लामी राजनीति में हिस्सा ले। मुसलमान आजकल की ग़ैर-इस्लामी राजनीति में न तो किसी ओहदे का उम्मीदवार बनकर खड़ा हो सकता है और न वह किसी को अपना वोट दे सकता है क्योंकि मुसलमान न तो अपने को मुल्क का मालिक जानता है कि वह अपनी मिलकियत का यह हक़ किसी और को दे सके और न वह अपने को क़ानून बनाने वाला समझता है कि क़ानून बनाने का अख़्तियार अपनी तरफ़ से किसी को सौंप दे। इस्लाम में ये सारे ही काम ग़लत हैं, दीन के ख़िलाफ़ हैं और मुसलमान के लिए ठीक नहीं कि वह इन कामों में फँसे।

दो ख़तरे

इस वक़्त मुसलमानों के सामने दो ख़तरे ऐसे हैं कि जिनके कारण मुसलमानों को दीन से नाता जोड़े रखना आसान नहीं है। पहला ख़तरा लादीनी जमहूरियत का है। लादीनी जमहूरियत की शिक्षा यह है कि मुल्क के मामलात का ताल्लुक़ मज़हब और ख़ुदा से न होना चाहिये। मज़हब हर शख़्स का अपना निजी मामला हैं। समाजी मामलात इन्सान के अपने बनाये हुए क़ानून पर चलाए जाना चाहियें। इस्लाम इसको झगड़े की जड़ बताता है। इस्लाम के ज़िन्दा रहने के लिए ज़रूरी है कि ज़िन्दगी के सारे ही काम इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ हों।

दूसरा ख़तरा इश्तराकियत का है। इश्तराकियत आख़िरत के अक़ीदे को और अल्लाह के हुक्मों की खोज करने को और इन्सानियत की शिक्षा को धोका बताती है। इश्तराकियत धार्मिक आन्दोलन को सरमायादारों का ढकोसला कहती है। इसके मानने वालों का कहना है कि इन्सान के सामने सिर्फ़ एक ही मसला है और वह मसला है पेट का। इन्सान को पेट ही के लिए सब कुछ करना चाहिये।

ये दोनों बातें इस्लाम के बिल्कुल ख़िलाफ़ हैं। ज़िन्दगी के जिस मामले में आप लादीनी जमहूरियत या इश्तराकियत में से कोई चीज़ भी क़बूल करेंगे, वहाँ इस्लाम न होगा और जिस हिस्से में इस्लाम होगा, वहाँ इन दोनों में से एक भी ठहर न सकेगा। कुछ लोग मुसलमानों को इस धोखे में रख रहे हैं कि वे

चाहे लादानी जमहूरियत पर चलें चाहे इश्तराकियत का झंडा ऊंचा करें, उनके दीन को कोई ख़तरा नहीं। ऐसे लोग या तो ख़ुद धोके में हैं या फिर जान-बूझकर मुसलमानों को धोका देना चाहते हैं।

दीन की ख़िदमत

अल्लाह तआला ने हर इन्सान को समझ दी है। अगर इन्सान इस समझ से ठीक-ठीक काम ले तो वह ख़ुद भी यह फ़ैसला कर सकता है कि दुनिया का एक पैदा करनेवाला और उसका इन्तिज़ाम करनेवाला ज़रूर है। उसी ने इन्सान को भी पैदा किया है। इसलिए इन्सान को उसकी ताबेदारी करना चाहिए मगर यह अल्लाह की रहमत है कि उसने इन्सान के इस बोझ को हल्का कर दिया है और उसको उसकी समझ के हवाले नहीं किया है बल्कि हर ज़माने में उसने अपने रसूल भेजे। इन रसूलों ने इन्सान को अल्लाह का रास्ता दिखाया और साफ़-साफ़ बता दिया कि अल्लाह तआला किन बातों को पसन्द करता है और किन बातों को नापसन्द ?

अल्लाह तआला फ़रमाता है :—

"और हमने अपने रसूल भेजे जो ख़ुशख़बरी देने वाले और होशियार करने वाले हैं ताकि इन रसूलों के आने के बाद लोगों के पास कोई ऐसी हुज्जत बाक़ी न रह जाये, जिसे वह अल्लाह तआला के सामने पेश कर सकें। अल्लाह तआला ज़बरदस्त है और हिकमत वाला है।"

(निसा आयत १६५)

رُسُلًا مُّبَشِّرِيْنَ وَ
مُنْذِرِيْنَ لِئَلَّا يَكُوْنَ
لِلنَّاسِ عَلَى اللّٰهِ حُجَّةٌ
بَعْدَ الرُّسُلِ وَكَانَ
اللّٰهُ عَزِيْزًا حَكِيْمًا ۝

(النساء آیت ١٦٥)

सारे नबियों के बाद हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाह अलैहिव-सल्लम आये। अब दुनिया इतनी तरक़्क़ी कर चुकी थी कि अगर सारी दुनिया के लिए एक ही दीन भेज दिया जाये तो पूरी दुनिया उससे फ़ायदा उठा सकती थी। इसीलिए अल्लाह तआला ने अपना दीन आख़िरी और पूरे तौर पर नबी सल्लाल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़रिये भेजा। यह दीन क़ियामत तक के लिये और सारे इन्सानों के लिये जीवन बिताने का पूर्ण विधान (पूरा क़ानून) है। यही वह रास्ता है जिसपर चलकर हर इन्सान ख़ुदा को ख़ुश कर सकता है। सिर्फ़ यही वह दस्तूर (विधान) है जिसपर ज़िन्दगी गुज़ारकर हर इन्सान ज़िन्दगी को सफल बना सकता है। और यही वह एक तरीक़ा है जिस पर चलकर हर इन्सान आख़िरत का वह सुख पा सकता है, जो सदा रहेगा। इसके सिवा जो रास्ता है, वह ग़लत है और जो दीन है वह झूठा। अल्लाह फ़रमाता है:—

وَمَآ اَرْسَلْنٰكَ اِلَّا كَآفَّةً لِّلنَّاسِ بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا وَّلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ○

(السبا آیت ۲۸)

"ऐ नबी! हमने आपको सारे इन्सानों के लिए ख़ुशख़बरी देनेवाला और होशियार करने वाला बनाकर भेजा है लेकिन बहुत से लोग इस बात को समझते नहीं।" (सूरः सबा आयत २८)

अल्लाह का दीन दुनिया के सारे इन्सानों तक कैसे पहुँचे,

लोगों को कैसे मालूम हो कि अल्लाह तआला ने उनको सीधा रास्ता दिखाने के लिए अपना क्या क़ानून उतारा है ? इसकी ज़िम्मेदारी हुज़ूर की उम्मत पर डाली गई है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के बाद यह काम उम्मत का है कि वह दुनिया वालों को हुज़ूर का लाया हुआ पैग़ाम पहुँचाये और उन्हें अल्लाह के हुक्म और उसकी मरज़ी बता दे ताकि कल क़ियामत के दिन वह अल्लाह के सामने यह न कह सकें कि हमें तो कुछ मालूम ही न था। क़ुरआन पाक में है:—

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً
وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ
عَلَى النَّاسِ وَيَكُوْنَ
الرَّسُوْلُ عَلَيْكُمْ شَهِيْدًا

(البقرہ۔آیت ۱۴۴)

"और ऐ मुसलमानो ! इसी तरह हमने एक बीच का गिरोह (इन्साफ़ पर क़ायम रहनेवाला) बनाया है ताकि तुम लोगों पर अल्लाह के दीन की गवाही दो और रसूल तुम पर अल्लाह के दीन की गवाही दें।" (बक़रा १४४)

यही बात क़ुरआन पाक में कई जगह फ़रमाई गई है और साफ़-साफ़ बताया गया है कि नबी स० के बाद यह काम आपकी उम्मत का है कि वह दुनिया के तमाम लोगों तक अल्लाह का दीन पहुँचायें और उन्हें सच्ची कामयाबी का सीधा रास्ता दिखायें।

यह बात इतनी साफ़ है कि कोई मुसलमान भी इसका इन्कार नहीं कर सकता। लेकिन आजकल इसकी अहमीयत को लोगों ने भुला दिया है। ज़्यादा से ज़्यादा वे यह समझते हैं कि

यह एक नेकी का काम है और इसके करने से सवाब मिलेगा। सच्ची बात यह है कि इस्लाम की नज़र में इसकी बहुत बड़ी अहमीयत है। क़ुरआन पाक में है कि:—

"और मेरी तरफ़ यह क़ुरआन उतारा गया ताकि मैं इसके ज़रिये तुमको होशियार करूँ और जिनको यह क़ुरआन पहुँचे (वे दूसरों को होशियार करें।")

وَاُوْحِیَ اِلَیَّ هٰذَا الْقُرْاٰنُ لِاُنْذِرَكُمْ بِهٖ وَمَنْۢ بَلَغَ (الانعام۔آیت ۱۹)

दूसरों को दीन की तरफ़ बुलाना मुसलमानों पर फ़र्ज़ है। जिस तरह ख़ुद उनपर अल्लाह की तावेदारी करना और उसके दीन पर चलना फ़र्ज़ है इसी तरह अल्लाह के दूसरे बन्दों तक अल्लाह के दीन को पहुँचाने की कोशिश करना भी फ़र्ज़ है। इसीका नाम दीन की ख़िदमत है। यह ख़िदमत दो तरह से की जाती है।

(१) अगर इस्लामी हुकूमत क़ायम हो तो यह उसका काम है कि वह दुनिया के लोगों के सामने इस्लामी शिक्षा पेश करे और अपनी हुकूमत के इन्तिज़ाम से यह जता दे कि इस्लाम ज़िन्दगी के जिस निज़ाम को क़ायम करना चाहता है वह कितना अच्छा है। इस तरीक़े की सारी और पूरी बातें उस समय के हालात में मिलती हैं जो मदीने में ठहरकर नबी स० ने कर दिखाईं फिर आपके बाद चारों इस्लामी ख़लीफ़ा उसी तरीक़े पर चलते रहे।

(२) अगर इस्लामी हुकूमत क़ायम न हो तो फिर उम्मत के हर आदमी पर फ़र्ज़ है कि वह इस ख़िदमत को करने के

उपाय करे। अगर वह बिल्कुल अकेला हो तो अकेला इस काम को करे, नहीं तो लोग जहाँ भी संगठित हो जायें, मिलजुलकर इस फ़र्ज को अदा करें। इस तरीक़े से दीन की खिदमत करने के लिये जिन तरीक़ों पर चलने की ज़रुरत है, उसकी सारी बात नबी स० और आपके सहाबा को उस समय पेश आई। दूसरों को दीन की तरफ़ बुलाने के दो तरीक़े हैं।

(क) बातचीत के ज़रिये और लिख लिखा कर लोगों को इस्लाम की बातें बतायें ताकि वे इस पर सोचें और अगर उनको इत्मीनान हो जाये तो उसे क़ुबूल (स्वीकार) करलें।

(ख) मुसलमान अपने हर काम से इस्लाम का ऐसा सच्चा नमूना पेश करें कि लोग उन्हें देखकर इस बात को सोचने पर विवश हो जायें कि जिन नियमों पर चलकर ये लोग एसे अच्छे बनगये हैं वे नियम सचमुच सच्चे हैं और अब वे उन नियमों को परखने और बरतने पर मजबूर [विवश] हो जायें और इस तरह पूरे इत्मीनान के बाद वे अल्लाह के दीन को अपना लें और अगर अपनी ज़िद, हठधर्मी तास्सुब (पक्षपात) या किसी और कारण से अल्लाह की हिदायत को न भी मानें तो मुसलमान अपनी ज़िम्मेदारी के बोझ से हल्के हो जायें और कल क़यामत के दिन इन्कार करने वालों को यह कहने का बहाना न बाक़ी रहे कि उन्हें मालुम ही न था कि अल्लाह का दीन क्या है और उसकी मरज़ी किस तरह मालुम की जाये।

यह है वह बड़ी ज़िम्मेदारी, जिस पर मुसलमानों को लगाया गया है। अगर आप सोचें तो आसानी से समझ में आ सकता है कि इस्लाम जो मुसलमानों को इतना अच्छा इन्सान

बनाना चाहता है, उसकी ग़रज़ क्या है ? ईमान की ज्योति से उसके मन को जगमगाना और उसके दिल से हर खोट का निकालना। नमाज़, ज़कात, रोज़ा और हज जैसी इबादत का हुक्म देकर उसको जिम्मेदार बनाना, उसका फ़र्ज़ उसको पहचनवाना और ताबेदार बनाना और उसको इस क़ाबिल कर देना कि हर ऊँच-नीच के मौक़े पर सीधे रास्ते पर जमा रहे। उसका अख़-लाक़ और उसकी आदतें संवार कर ऐसा बनाना कि लोग उस से प्रेम करने लगें और इस क़ाबिल बना देना कि सब के हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त कर सके और फिर लोगों के दिलों पर हुकूमत कर सके। आख़िर ये सारे प्रोग्राम किस लिये हैं ? यह सारी कोशिश उसे किस काम के क़ाबिल बनाती है ? अल्लाह के इस सिपाही को वे कौन से काम करने हैं जिनके लिये उससे यह तय्यारी कराई जाती है। वह काम यही, दीन की ख़िदमत है। अल्लाह तआला फ़रमाता है:

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا
كُونُوا قَوَّامِينَ لِلَّهِ
شُهَدَاءَ بِالْقِسْطِ ؕ
(المائدہ۔ آیت ۸)

"मुसलमानो ! ख़ुदा के लिये (उसे ख़ुश करने के लिये) उठ खड़े होनेवाले और ठीक-ठीक सच्चाई की गवाही देनेवाले बनो।"
(सूरः माइदा आयत ८)

यह काम दुनिया का सबसे बड़ा काम है। यह वह काम है, जिस पर अल्लाह तआला ने सदा अपने नबियों को लगाया और नबी स० की उम्मत की यह सबसे बड़ी इज़्ज़त है कि अब

अल्लाह ने क़यामत तक के लिये यह काम उसको सौंपा है। यह इतनी बड़ी इज़्ज़त है कि इसकी तुलना किसी दूसरी चीज से नहीं की जा सकती। अल्लाह तआला फरमाता है।

كُنْتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ط

(آل عمران آیت ۱۱۰)

(ऐ मुहम्मद की उम्मत के लोगो !) तुम वह अच्छी जमाअत हो, जिसको सारे इन्सानों की हिदायत के लिये पैदा किया गया। तुम नेकी का हुक्म देते हो बुराई को रोकते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो। (आलिइमरान—११०)

लेकिन आप जानते हैं कि जिनके रुतबे हैं सिवा उनको सिवा मुश्किल है। इज़्ज़त का कोई स्थान इन्सान को यूं ही नहीं मिल जाता। इसके लिये कुछ दुख झेलना ही पड़ते है और अगर वह ज़िम्मेदारी से बचने की कोशिश करे या इस ज़िम्मेदारी को टालना चाहे तो उसे कड़े से कड़ा दन्ड भी मिलना ज़रूरी है।

अब ज़रा आजकल के मुसलमानों की हालत को देखिये कि वे इस फर्ज़ को किस तरह पूरा कर रहे हैं। इसमें शक नहीं कि अब भी मुसलमानों में गिनती के कुछ आदमी ऐसे ज़रूर मिल जायेंगे जो खुद तो इस जिम्मेदारी को पहचानते होंगे और उसे पूरा करने की कुछ न कुछ कोशिश करते होंगे लेकिन आमतौर पर उम्मत का क्या हाल है ? हमारे अन्दर बहुत ज़्यादा लोग ऐसे मौजूद हैं जिनके काम इस्लाम के बदले ग़ैर इस्लामी हैं। वे

अपने धन और पूंजी को इस्लामी कानून के बदले जाति और बिरादरी के रिवाज के मुताबिक़ बाँट कर यह जताना चाहते हैं कि उन्हें इस्लाम का यह कानून पसन्द नहीं। वे जज, वकील और मजिस्ट्रेट बन कर अल्लाह के कानून के सिवा दूसरे क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसले करते और कराते हैं और प्रोफेसर बनकर इस्लाम के ख़िलाफ़ विषय पढ़ाते हैं। वे कवि और शायर बनकर इस्लाम का मज़ाक उड़ाते हैं। वे व्यापारी और मिल मालिक बनकर इस्लाम के उसूलों के ख़िलाफ़ कारोबार और व्यवहार करते हैं। वे राजनीति में हिस्सा लेकर इस्लाम के ख़िलाफ़ प्रोग्राम चलाते हैं। वे लीडर बन कर इस्लाम के ख़िलाफ़ नारे लगवाते हैं। वे झूठ बोलते हैं। चोरी करते हैं, डाके डालते हैं। हर तरह का फ़साद करते हैं। बेशर्मी के सारे कामों में शरीक़ होते हैं। इनके मेलों और उर्सों में, इनके जलसों और जलूसों में इस्लामी हुक्मों की खुल्लम खुल्ला तौहीन होती है। इनके भाषण इनके बयानात, इनके जोड़ तोड़ ग़रज यह कि वह कौन सा बुरा काम है जिससे ये दूसरों से पीछे हों। इन्तिहा तो यह है कि शिर्क और बुत-परस्ती (मूर्ति पूजा) तक में भी ये दूसरों से पीछे नहीं। काफ़िर और मुश्रिक जो कुछ अपने बुतों (मूर्तियों) के साथ करता है, इसी तरह के काम ये अपने पुरुषों पूर्वजों की क़बरों और ताज़ियों के साथ करते हैं।

ऐसा है आजकल का मुसलमान क्या ऐसे मुसलमान को देखकर कोई ग़ैर-मुस्लिम इस्लाम को पहचान सकता है? या इस्लाम के बारे में कोई अच्छी राय क़ायम कर सकता है? क्या यही वह सूरत है जिसमें अल्लाह के बन्दों तक अल्लाह के दीन

की रोशनी पहुँच सकती है ? नहीं हरगिज़ नहीं।

बात दरअसल यही है कि मुसलमान इस फर्ज़ को पूरा करने से कतराते हैं। अल्लाह के इन सिपाहियों ने अपनी जिम्मेदारी को बहुत दिनों से भुला रखा है। यही कारण है कि आज हिन्दुस्तान ही में नहीं, बल्कि सारी दुनिया में ज़लील हो चुके हैं। यह तो उनके जुर्म की वह सज़ा है, जो दुनिया में मिल रही है। आख़िरत में तो इससे कहीं ज्यादा सजा का डर है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया कि :—

"उस खुदा की कसम जिसके बस, में मेरी जान है। लोगों को तुम ज़रूर-ज़रूर नेकियों का हुक्म करते रहोगे औरबुराइयों से रोकते रहोगे लेकिन याद रखो, अगर तुमने ऐसा न किया तो हो सकता है कि अल्लाह तुम को किसी सख्त किस्म के अजाब में फंसादे और फिर तुम उससे दुआयें करो और तुम्हारी दुआयें भी उस वक्त न सुनी जायें।

दीन की इसी ख़िदमत को क़ुरआन पाक और हदीसों में 'जिहाद' कहा गया है। 'जिहाद' अरबी भाषा में जान तोड़ कोशिश करने को कहते हैं। दीन की ख़िदमत के लिये जो कोशिश भी की जाये वह इसमें शामिल है। लोगों को दीन की तरफ़ बुलाना, उन्हें दीन की बातें बताना, इस काम में हर तरह की तकलीफ़ उठाना फिर अगर ज़रूरत पड़े तो दीन के लिये वतन (मातृ भूमि) छोड़ देना और वक्त आ जाये तो इसी काम के लिये अपनी जान तक निछावर कर देना, ये सारे काम जिहाद ही में शामिल हैं।

'जिहाद' सबसे बड़ी ईबादत है। अल्लाह तआला फरमाता है —

"ऐ इमान लाने वालो! रुकू करो, सजदा करो, अपने रब की बन्दगी करो और नेकी के काम करो इस तरह उम्मीद है कि तुम (दुनिया व आख़िरत में) सफल होगे और अल्लाह की राह में जान तोड़ कोशिश करो, जैसी जान तोड़ कोशिश की जाती है। उसने तुमको (इस काम के लिये) पसन्द कर लिया है और दीन की ख़िदमत के कामों में उसने कोई कठिन काम तुम पर नहीं डाला है। यह तुम्हारे बाप इब्राहीम का दीन है। उसने तुम्हारा नाम मुस्लिम (ताबेदार) रखा था। इससे पहले भी और इस कुरआन में भी, ताकि रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर हक (सत्य ता) के गवाह बनो। तो नमाज क़ायम करो, जकात अदा करते

يَاأَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ارْكَعُوْا
وَاسْجُدُوْا وَاعْبُدُوْا رَبَّكُمْ
وَافْعَلُوا الْخَيْرَ لَعَلَّكُمْ
تُفْلِحُوْنَ ۚ وَجَاهِدُوْا
فِي اللّٰهِ حَقَّ جِهَادِهٖ ط
هُوَ اجْتَبٰىكُمْ وَمَا جَعَلَ
عَلَيْكُمْ فِي الدِّيْنِ مِنْ
حَرَجٍ ط مِلَّةَ اَبِيْكُمْ اِبْرٰهِيْمَ ط
هُوَ سَمّٰىكُمُ الْمُسْلِمِيْنَ ۵
مِنْ قَبْلُ وَفِيْ هٰذَا لِيَكُوْنَ
الرَّسُوْلُ شَهِيْدًا عَلَيْكُمْ
وَتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى

النَّاسِ ۚ فَأَقِيمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَاعْتَصِمُوا بِاللّٰهِ ۗ هُوَ مَوْلٰىكُمْ ۚ فَنِعْمَ الْمَوْلٰى وَنِعْمَ النَّصِيْرُ

(سورہ حج آیت ۷۷ و ۷۸)

रहो और अल्लाह के ताल्लुक़ को मजबूती से थाम लो। वही तुम्हारा मालिक है (देखो तो, कैसा अच्छा मालिक है और कैसा अच्छा मददगार)।
(सूरः हज आयत ७७, ७८)

सूरः हज की इन आयतों को सामने रखिये और देखिये कि मुसलमानों को क्या-क्या हुक्म दिये जा रहे हैं। सबसे पहला हुक्म नमाज़ का है। इसके बाद पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह तआला की पूरी तावेदारी करने की ताकीद की है फिर अच्छे अखलाक़ और अच्छे कामों का हुक्म है। इसके बाद अल्लाह के दीन की ख़िदमत में ऐसी जान तोड़ कोशिश करने का हुक्म है जैसी कि कोशिश करना चाहिये फिर फ़रमाया गया कि ऐ मुसलमानो! तुमको इसी काम के लिये पसन्द किया गया हैं और दीन की ख़िदमत का यह काम जो तुम पर डाला गया है, इसमें कोई ऐसी कठिनाई नहीं है जो तुम सह न सको। यह वही दीन है, जो हज़रत इब्राहीम का दीन था। तुमने अल्लाह की ताबेदारी अपनाने का इक़रार किया है और उसके हर हुक्म पर चलने का फ़ैसला किया है, इसीलिये तुम्हारा नाम मुस्लिम (ताबेदार) रखा गया। तुमसे पहले भी ऐसे ताबेदारों का नाम मुस्लिम ही था और अब क़ुरआन में भी उनको मुस्लिम ही के नाम से

याद किया गया है। रसूल स० तुम पर हक़ के गवाह हैं इसका मतलब यह है कि नबी स० तुमको अल्लाह का सच्चा दीन पहुँचा रहें हैं ताकि तुम उनके बाद इस दीन को लोगों तक पहुँचाओ। तुम इसी काम पर लगाये गये हो। लेकिन इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिये तुम्हें जिस शक्ति की ज़रूरत है और जिसके बल बूते पर तुम दुनिया में यह काम करोगे उसे हासिल करने के लिये तुम नमाज़ क़ायम करो, ज़कात अदा करते रहो और अल्लाह से अपने सम्बन्ध को ज़्यादा मज़बूत करो। तुम्हारे काम बनाने वाला और तुम्हारा मालिक वही अल्लाह है। तुमको सिर्फ़ उसी के भरोसे पर इस काम को करना है और यह तुम जानते ही हो कि वह कैसा अच्छा सहायक है।

आपने देखा! नमाज़, ज़कात और दीन के वे सारे हुक्म, जिनको आमतौर पर धार्मिक आदेश समझा जाता है, किस तरह 'जिहाद' के लिये तय्यार करते हैं। इस्लामी जीवन अपनाने से पहले न तो आदमी इस क़ाबिल हो सकता है कि वह जिहाद जैसी पाक इबादत में भाग ले सके और न वह उस वक्त तक अल्लाह के दीन की खिदमत के लिये जान तोड़ कोशिश (जिहाद) कर सकता है। जब तक कि वह नमाज़, ज़कात जैसी बुनियादी इबादतों पर क़ायम रह कर अल्लाह तआला से अपना सम्बन्ध मज़बूत न बना ले।

दीन की ख़िदमत कैसे हो

(१) जमाअत

इस्लाम में इस बात पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है कि हर मुसलमान अपनी जगह नेक बन जायेऔर अल्लाह से डरकर बुरे कामों से बचा रहे। सच्ची बात यह है कि इसके बिना दीन का कोई काम हो भी नहीं सकता। इसके साथ यह भी याद रखिये कि हर मुसलमान का अलग-अलग नेक बनजाना दीन का बहुत छोटा हिस्सा है। दीन का बहुत बड़ा हिस्सा वह है जो मुसलमानों की जमाअती ज़िन्दगी से है यानी यह कि मुसलमान मिलजुल कर एक जमाअत बन जायें और फिर वे दीन को फैलाने का काम करें। जब तक एक जमाअत बनकर हर काम को इस्लामी तरीकों पर न चलायगें, दूसरे लोगों को अल्लाह के दीन की क़द्र न होगी। यह भी ध्यान में रखिये कि अगर मुसलमानों की जमाअत उन उसूलों पर बनेगी जो इस्लामी न होंगे तो ऐसी जगह वे नेक लोग भी इस्लामी उसूलों पर अमल न कर सकेंगे जो इधर उधर बिखरे होंगे। इसकी मिसाल हमारे आपके सामने हैं। आज अगर हम यह कहें कि अल्लाह का दीन इन्सानों की ज़िन्दगी की सारी उलझनों को सुलझा सकता है तो हमारे इस कहने को कोई न मानेगा। चाहे हम अपनी-अपनी

जगह कितने ही नेक हों। हमें अपनी-अपनी जगह नेक बनकर नेकों की जमाअत बनाना पड़ेगी। ऐसी जमाअत जिसके अन्दर लोग इन्सानी ज़िन्दगी की वे उलझते सुलझते देखें जो आज दुनिया के सामने हैं। लेकिन अगर हमारे मिलेजुले मामलात उन उसूलों पर चलें, जो इस्लाम के खिलाफ़ हों तो हमें नेकी और पर-हेज़गारी क़ी राह अपनाने में क़दम-क़दम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। आज जो कुछ हो रहा है, उस पर नज़र डाल लीजिये। एक व्यापार ही को लीजिये, अगर कोई आदमी व्यापार करते समय अल्लाह की ना-फ़रमानी से बचना चाहें तो उसके लिये कितनी मुश्किल होगी ? यही हाल ज़िन्दगी के दूसरे मामलात का है। इसका अन्दाज़ा हर आदमी ख़ुद कर सकता है। इसलिये पूरे दीन को क़ायम करने के लिये और पूरी ज़न्दगी में उसका ठीक-ठीक नमूना पेश करने के लिये यह बात बहुत ज़रूरी है कि सारे मिलेजुले मामलात इस्लाम के उसूलों पर चलें। दीन की पूरी खिदमत उसी वक्त हो सकती है, जब ठीक-ठीक इस्लामी उसूलों पर सच्चा निज़ाम क़ायम हो और लोग यह देखलें कि इस्लाम सचमुच अल्लाह की कितनी बड़ी रहमत है ? नबी स० के इस दुनिया से जाने के बाद सिर्फ़ पचास साल के बाद पूरी दुनिया ने इस्लामी उसूलों का लोहा मान लिया। आधी से ज्यादा दुनिया ने इस्लामी उसूलों को क़बूल कर लिया। बाक़ी दुनिया ने भी मान लिया कि सच-मुच उनके पास इन उसूलों से बढ़कर कोई उसूल नहीं हैं। यह सारी बरकत किस बात की थी ? इसका कारण एक ही है और वह यह कि दुनिया के सामने एक ऐसे पूरे का पूरा सच्चा

निज़ाम मौजूद था, और जिसकी बुनियाद थी अल्लाह का डर और अल्लाह के डर से उसकी न फ़रमानी से बचना ।और जो इस्लामी उसूलों का ठीक-ठीक नमूना था ।

हर निज़ाम को क़ायम करने के लिये मिलजुल कर कोशिश करने की ज़रूरत होती है। अलग अलग चाहे जितने आपसी काम करते रहें कभी किसी निज़ाम में कोई तबदीली पैदा नहीं कर सकते। निज़ाम को बदलने के लिये मिलजुल कर काम करना ज़रूरी है । बुराई फैलाने वाले मिलजुल कर बुराई फैलाने की कोशिश करते हैं। ग़लत उसूलों को चलाने व लागू करने के लिये जमाअतें उठती हैं और उन्हें फैलाती हैं । इसी तरह हक़ (सत्य) का काम भी जमानत के बिना नहीं हो सकता । सच्चे (उसूलों को फैला देने और लागू कर देने के लिये इन उसूलों के मानने वालों को मिलजुल कर काम करना ज़रूरी है। यही कारण है कि इस्लाम में जमाअत ज़रूरी बनाई गई है। इस्लाम जमाअत के बिना ज़िन्दगी को इस्लामी ज़िन्दगी नहीं कहता बल्कि जाहिलियत (मूर्खता) की ज़िन्दगी बताता है और जमाअत से अलग रहने को ऐसा समझता हैं जैसे कोई इस्लाम ही से अलग हो जाये नबी स० ने फ़रमाया:—

"मैं तुमको पाँच चीजों का हुक्म देता हूँ (१) जमाअत (२) हुक्म सुनने का (३)हुक्म मानने का (४) हिजरत (जरूरत के वक्त दीन के लिये घर बार और देश छोड़ देने का) और ५)जिहाद का यानी अल्लाह के दीन के लिये जान तोड़ कोशिश करने और वक्त आने पर इस राह में जान तक की बाज़ीलगा देना) जो आदमी जमाअत से एक बालिश्त भी अलग

हुआ वह इस्लाम से अलग हुआ सिवाय उसके जो फिर जमाअत में लौट आये। और जिसने ज़ाहिलीयत (इस्लाम के उसूलों के खिलाफ़ काम) की तरफ लोगों को बुलाया वह जहन्नमी है। सहाबा ने पूछा "यासूलुल्लाह ! चाहे वह रोज़े रखे और नमाज़ पढ़े ? (तब भी जहन्नमी होगा ?) आपने फ़रमाया "हाँ चाहे वह नमाज़ पढ़े, रोज़े रखे और अपने को मुसलमान कहे। (अहमद व हाकिम)

इस हदीस से तीन बातें साबित होती हैं (१) दीन की खिदमत करने के लिये सबसे पहले एक ज़माअत की ज़रूरत है ऐसी ज़माअत जिसके पास कोई क़ानून व क़ायदा हो और उन्हीं क़ायदों और क़ानून के मुताबिक़ काम करे। लोग किसी एक की बात मानें और उस पर अमल करें। अगर किसी मौके पर यह ज़रूरी हो जाये कि दीन की खिदमत करने वाले ये सारे लोग अपने घरों को छोड़कर किसी एक जगह इकट्ठा हो जायें तो यह भी किया जाये और जब वक्त आ जाये तो यह एक क़ायदा व क़ानून पर चलने वाली जमाअत इस्लाम को फैलाने के लिये अल्लाह से फिरे हुए लोगों के मुकाबिले में जिहाद कर सके। और जिस सच्चे दीन और अच्छे विधान को क़बूल किया है, उसे फैलादे और सब पर लागू कर दे। या फिर जान निछावर करके इस्लाम का सच्चा गवाह (शाहिद) साबित हो।

(२) जमाअत से अलग रहना इस्लाम से अलग रहना है।

(३) इस्लाम के बहुत से काम सिर्फ़ जमाअत के साथ रहते हुये ही पूरे हो सकते हैं। अगर कोई आदमी इन कामों को छोड़

बैठें तो उसका नमाज पढ़ना, रोज़ा रखना और अपने को मुसल-मान बताना सब बेकार है।

अलजमाअत

वह कौन सी जमाअत है, जिससे निकलना इस्लाम से निकलने के बराबर है। हमारी बदक़िस्मती से यह जमाअत मौजूद नहीं है। दरअस्ल इसका मतलब वह इस्लामी निज़ाम है जिसका एक अमीर (सरबराह) हो, जो सारे मुसलमानों का ख़लीफ़ा हो और जो लोगों पर अल्लाह के ठीक-ठीक हुक्म चलाता हो। दुनिया में आज मुसलमान चालीस करोड़ से ज़्यादा है लेकिन किसी मुल्क़ में भी उनका कोई इस्लामी निजाम कायम नहीं है। ख़ुद हमारे मुल्क में देख लीजिये, उसके एक हिस्से (पाकिस्तान) में मुसलमानों की अक्सरियत है (यानी वे ज़्यादा है) मुल्क का इन्तिजाम भी उन्हीं के हाथों में है। वे अपने मामलात में आज़ाद भी हैं लेकिन अभी तक वह इस्लामी निज़ाम मौजूद नहीं हैं। रह गया वह हिस्सा जो भारत कहलाता है तो यहाँ के तो बहुत से मुसलमान इस नाम को भी नहीं जानते। ऐसी हालत में किसी जमाअत को यह हक़ हासिल नहीं है कि वह अपने को ऐसी जमाअत कह सके, जिससे अलग रहने को अल्लाह के रसूल ने इस्लाम से अलग रहना फ़रमाया है। लेकिन अगर कोई ऐसी जमाअत मौजूद न हो तो मुसलमानों की ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है और अब दीन की ख़िदमत का फ़र्ज़ उन पर और ज़्यादा सख़्ती से आ पड़ता है।

ऐसी हालत में क्या किया जाये इसके लिये एक ही राह है। अल्लाह के जो बन्दे दीन की ख़िदमत का फ़र्ज़ अदा करने का इरादा करें वे पहले यह देखें कि क्या कोई ऐसी जमाअत पहले से इस्लामी कानून के मुताबिक काम कर रही है, जिसका एक अमीर है। उस अमीर के हुक्म पर सब अमल करते हैं। अगर ऐसी कोई जमाअत सामने आये तो उसके काम करने के तरीकों और उसके उसूलों के मुताबिक उसके कामों और ख़ुद उसके उसूलों को परखा जाये अगर ये सारी बातें इस्लामी तालीम के मुताबिक हों तो उस जमाअत के साथ मिलकर काम शुरू कर दिया जाये। अपने आप को उस जमाअत के हवाले कर दिया जाये। और फिर हर उस काम में जो, अल्लाह की किताब और उसके रसूल की सुन्नत के मुताबिक़ हो उस जमाअत का साथ दिया जाये। अगर ऐसी जमाअत न हो तो फिर वही अल्लाह के बन्दे जो दीन की ख़िदमत का इरादा लेकर उठें, आपस में मिल जायें और इस्लामी उसूलों के मुताबिक एक जमाअत बन जायें, अपना अमीर किसी को बनालें और फिर मिलजुल कर दीन की ख़िदमत करें।

जो जमाअत दीन की ख़िदमत के लिये बनें उसमें कुछ बातें ख़ास होना चाहिये। वह उन जमाअतों की तरह कोई जमाअत न हो जैसीकि आजकल बनती रहती है।

(१) सबसे पहली बात तो यह होना चाहिये कि इस तरह की इस्लामी जमाअत की बुनियाद किसी कौम या किसी मुल्क पर न हो बल्कि ख़ालिस इस्लामी उसूलों की बुनियाद पर हो। इस बात को यों समझिये कि वह किसी ख़ास कौम के लोगों की

जमाअत न हो और न किसी ख़ास मुल्क की। इस्लामी जमा-अत का मतलब यह न होगा कि हर आदमी जो मुसलमान कौम से हो, वह इसमें शामिल ही समझा जायेगा। दरअस्ल होना तो यही चाहिये था कि जमाअत इस्लामी नाम ही होता तमाम मुसलमानों की जमाअत का लेकिन हमारी बदक़िस्मती है कि आज सारे मुसलमानों की ज़िन्दगी इस्लाम के बनाये हुये उसूलों के मुताबिक नहीं हैं। इसलिये कोई आदमी चाहे वह मुसल-मान ही क्यों न हो, उस वक्त तक उस जमाअत में शामिल न समझा जाये, जबतक कि वह दीन के उसूलों पर अमल करने का फैसला न करले और दीन की ख़िदमत करना ही अपनी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा काम न बना ले।

(२) इस जमाअत का काम दीन की ख़िदमत और दीन के प्रचार के सिवा और कुछ न हो। मुसलमान के क़ौमी हुक़ूक़ किसी ख़ास भाषा की हिफ़ाज़त, व्यापार और नौकरियों में हिस्सा लेने के लिये कोशिश करना और इसी तरह के दूसरे सारे कामों से उसे कोई ग़रज न होना चाहिये और न यह जमाअत इन कामों में अपना वक़्त दे।

(३) यह जमाअत किसी ग़ैर इस्लामी सियासत (राज-नीति) में कोई हिस्सा न ले और लोगों को आजकल की चालू सियासत का ठीक-ठीक मतलब समझाये और यह बताये कि इस सियासत का इस्लाम से कोई जोड़ नहीं हो सकता बल्कि आजकल की गंदी सियासत में हिस्सा लेना दरअसल इस्लाम के साथ दुश्मनी करना है।

(४) यह जमाअत ज़िन्दगी के तमाम कामों में इस्लाम की

हिदायत लोगों के सामने पेश करे। जिन बातों पर अमल किया जा सके, उन पर पूरी हिम्मत के साथ अमल करे और जिन बातों पर अमल न किया जा सके, उनको कम से कम जबानी ही लोगों को समझाये और बताये कि इन मामलात में इस्लामी तालीम क्या है। जमाअत कम से कम अपने लोगों के दिलों में इस बात की तड़प पैदा करे कि वे इन हालात को जल्द से जल्द बदलने की धुन में लग जायें जो इनके लिये इस्लाम की पूरी पैरवी करने में रुकावट बनते हों।

(५) इस जमाअत में जो लोग शामिल होते जायें, वे किसी ऐसी हुकूमत के चलाने में कोई हिस्सा न लें जो ख़ुदाई कानून के मुताबिक़ न चलाई जाती हो। चाहे उस हुकूमत के चलाने वाले मुसलमान ही क्यों न हों। वे हर उस हुक़ूमत को ग़लत समझते हों, जो इस्लामी न हो और वे उनसे मेल न रखते हों बलकि उन के मुख़ालिफ़ हों।

(६) जो लोग इस जमाअत के साथ आ जायें वे हर हाल में जहाँ तक हो सके, सिर्फ़ इस्लाम के उसूलों के मुताबिक़ जिन्दगी बितायें और उनकी जिन्दगी इस्लाम का नमूना हो। जमाअत उन लोगों के कामों की देखभाल करे और उन्हें इस्लामी उसूलों पर चलाने के लिये सिखाती पढ़ाती रहे।

एक क़ानून और क़ायदे के तहत दीन की ख़िदमत के लिये पहली जरूरत यही है कि सारे काम करने वालों को एक जमाअत बनकर काम करना चाहिये। इस्लाम एक ऐसा दीन है, जिसमें इस बात पर ज्यादा ज़ोर दिया जाता है कि सब मिल-जुल कर काम करें। आप देखते हैं कि हर काम मिलजुल कर ही

होता है। नमाज़ पढ़ी जाती है तो जमाअत से और उसका एक इमाम होता है। हज किया जाता है तो मिलजुल कर और उस का एक अमीर होता है। हुक्म है कि तीन आदमी सफ़र को निकले तब भी अपने में से एक को अपना अमीर बना लें और सफर इस्लामी कायदे से उसी अमीर के इशारे पर करें।

नबी स० फ़रमाते हैं:—

"यह बात ठीक नहीं है कि तीन आदमी किसी जंगल में हों और वे अपने ऊपर अपने में से किसी एक को अमीर न बनालें"

इससे अन्दाज़ होता है कि इस्लाम किसी हाल में भी मुसलमानों को कानून, जमाअत और अमीर के बिना नहीं देखना चाहता।

हज़रत उमर फ़रमाते हैं:—

"जमाअत के बिना इस्लाम नहीं और किसी अमीर की अमीरी के बिना जमाअत नहीं और इताअत (ताबिदारी) के बिना अमीरी नहीं।

इसका मतलब यह हुआ कि इस्लाम पर पूरे का पूरा उसी वक्त चला जा सकता है जबकि मुसलमानों की एक जमाअत हो उनका एक अमीर हो सारे ही लोग अल्लाह के हुक्मों के तहत रहें और उस अमीर की पूरी-पूरी ताबेदारी करें।

सब्र और जमाव

यूं तो आज तक दुनिया का कोई बड़ा काम भी ऐसे लोगों के हाथों पूरा नहीं हुआ है जो थोड़ दिले बेसब्र हों लेकिन दीन

की खिदमत के लिये जिस सब्र और जमाव की ज़रूरत है वह बहुत ज्यादा है। सच तो यह है कि जिस आदमी में सब्र की ताक़त जितनी ज्यादा होगी वह उतना ही दीन की खिदमत का काम कर सकेगा।

सब्र का मतलब आम लोग यह समझते हैं कि अगर इन्सान पर कभी मुसीबत पड़े तो वह रोये चिल्लाये नहीं। उसे सब्र के साथ सह ले लेकिन दीन के सिलसिले में जब सब्र का शब्द बोला जाता है तो इसका मतलब वह नहीं होता जो आमतौरपर लोग समझते हैं। क़ुरआन पाक़ में यह शब्द बहुत जगह आया है। हर जगह उसका मतलब यह है कि मुसलमान कैसी ही हालत में हो दीन के हुक्मों पर बराबर चलता रहे। दीन उससे जो चाहे और माँगे, पूरा करता रहे। उसका दिल चाहे किसी भी बात को चाहता हो, उसके घर वालों, नातेदारों, बस्ती वालों की पसन्द कुछ ही क्यों न हो, समाज के रस्म व रिवाज ओर देश का दबाव कितना ही हो लेकिन यह सब सहे, पर दीन के रास्ते से न हटे।

दीन की खिदमत के लिये यह सब्र इतना ज़रूरी है कि हर ज़माने में नेकी फैलाने वाले और इस्लाम की ओर दूसरों को बुलाने वाले सबको सब्र की बड़ी ताक़ीद की गई है। क़ुर-आन पाक में जितने नबियों के हालात मिलते हैं, उनमें और उनके साथियों के लिये सब्र करने की हिदायत का बार-बार ज़िक्र आता है। खुद नबी स० को शुरू ही से सब्र की हिदायत दी गई। आपके नबी होने के कुछ ही दिन बाद सूरः मुद्दस्सिर उतरी। उसमें आपको हिदायत की गई कि

"आप अपने -मालिक और स्वामी की ख़ुशी के लिये सब्र अख़्तार करें" (आयत ७)"

وَلِرَبِّكَ فَاصْبِرْ (المدثر آیت ۷)

फिरइसके बाद सूर : मुज़्ज़म्मिल की दसवीं आयत में है :

"ये काफ़िर आपकी मुख़ालिफ़त में जो कुछ कहते हैं, उन्हें कहने दीजिये। इनकी बातों पर सब्र अख़्तियार कीजिये और बड़े अच्छे तरीक़ें से उन्हें उनके हाल पर छोड़ दीजिये और उनको मुंह न लगाइये।"

وَاصْبِرْ عَلٰى مَا يَقُوْلُوْنَ وَاهْجُرْهُمْ هَجْرًا جَمِيْلًا ۝ (المزمل آیت ۱۰)

जब कुछ लोग आपके साथी हो गये और काफ़िरों के ज़ुल्म सहने के लिये हुज़ूर सं० के अलावा मुसलमानों का एक जत्था बन गया उस वक़्त भी इन मुट्ठी भर अल्लाह वालों को सारे अरब के काफ़िरों और मुश्रिकों के मुक़ाबिले में तय्यार करने के लिये सब्र ही की हिदायत दी गई थी। फ़रमाया गया।

"ऐ ईमान वालो ? इन हालात के मुक़ाबिले के लिये तुम नमाज़ और सब्र से मदद लो। सचमुच अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है।

يَا أَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ۝ (البقرہ آیت ۱۵۳)

इस तरह की बहुत सी हिदायतें क़ुरआन पाक में मौजूद हैं और-ऐसे ऐसे कड़े मौक़ों पर सब्र की हिदायत बार-बार की गई कि उसे देखकर यही अन्दाजा होता है कि मुसलमान की ताक़त का बड़ा ख़ज़ाना इसी सब्र में मौजूद है और क्यों न हो जब सारे संसार का मालिक यह यक़ीन दिला दे कि अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है तो फिर मोमिन हर ताक़त के मुक़ाबिले में सब्र की ताक़त से क्यों न काम ले। जब तक मुख़ालिफ़ों के ज़ुल्म सहने का वक़्त होता है, उस वक़्त भी मोमिनों की हिम्मत बँधाने वाला यही सब्र शुरू होता है और जब इस्लाम के मुख़ालिफ़ों से टकराव होता हैं, उस वक्त भी मोमिन की सबसे बड़ा काम आने वाला हथियार यही सब्र होता है। फिर यही नहीं कि सब्र इसी दुनिया में दीन की ख़िदमत के सिलसिले में काम देता हो बल्कि आख़िरत के लिये भी सबसे अच्छी चीज़ है जो साथ ले जाई जाये! यहाँ जितना जिसमें सब्र होगा, उतना ही आखिरत में उसका मर्तबा बुलन्द होगा। क़ुरआन में है।

"आज के दिन मैंने उन्हें यह अच्छा बदला इसीलिये दिया है कि उन्होंने दुनिया में जो सब्र अख़्तियार किया था (उसका बदला यही होना चाहिये था और आज) वही मुराद को पहुँचे हुये हैं। (अलमोमिनून आयत ११)

إِنِّي جَزَيْتُهُمُ الْيَوْمَ بِمَا صَبَرُوا أَنَّهُمْ هُمُ الْفَائِزُونَ۔

(المومنون۔آیت ۱۱)

सूरः राद में बड़े फैलाव से उन नेमतों को गिनाया गया है

जो सब्र करने वालों को क़ियामत में दी जायेंगी। बात को ख़त्म करते हुए फ़रमाया:

"तुम पर सलामती हो, इस लिये कि तुमने सब्र अपनाया था तो (यह जन्नत) कैसा अच्छा घर है बदले में।" "राद," आयत ११

سَلٰمٌ عَلَيۡكُمۡ بِمَا صَبَرۡتُمۡ فَنِعۡمَ عُقۡبَى الدَّارِ ٥

(الرعد آیت ۲۴)

ज़रा ध्यान दीजिये, कितनी बड़ी नेमत है। सब का मालिक ख़ुद सलामती भेज रहा हैं और आख़िरत में वह ठिकाना दे रहा है जो सारे ठिकानों से अच्छा है। इसके बाद अब वह क्या नेमत बाक़ी रह जाती है जिसे चाहा जा सके। इस "सलामुन अलैकुम" की लज्ज़त को सोचिये कितना मीठा है यह फल, कितना आनन्द है इसमें, जो सब्र के नतीजे में मिल रहा है। इसके बाद कोई मुसलमान यह कहे कि भाई! सब्र बड़ी कड़ी और कड़वी चीज़ है तो उसकी यह बात हल्की ही होगी।

दीन में सब्र का बहुत बड़ा दरजा है। दरअस्ल सब्र एक कसौटी है। दीन इसी से परखा जाता है। अल्लाह ने सदा अपने बन्दों को इसी कसौटी पर परखा है। यूं तो दुनिया का कोई काम ऐसा नहीं हैं जिसमें कुछ न कुछ मुश्किलें पेश न आती हों लेकिन अगर एक तरफ़ से मुश्किलों का सामना करना पड़ता है तो दूसरी तरफ़ से कुछ हिम्मत बँधने का सामान भी हो जाता है।

मुश्किल झेलने के बाद किसी काम में रुपया हाथ आता है, किसी से नाम होता है और किसी में आदर और दबाव बढ़ता है, किसी काम से लोग ख़ुश होते हैं, किसी में हुकूमत से इनाम मिलते हैं किसी काम से अपना मन ख़ुश होता है और कोई काम यार दोस्तों की ख़ुशी का कारण बनता है लेकिन दीन की ख़िदमत ही एक ऐसा काम हैं कि उसके करने से उन चीज़ों में कोई भी हाथ नहीं आती। दीन की ख़िदमत का काम सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी के लिये किया जाता है। इस काम में कोई दूसरा लोभ आते ही अस्ल बात (ख़ुदा की ख़ुशी वाली) ख़त्म हो जाती है। नबी स० फ़रमाते हैं :—

"कर्मों का फल नीयतों पर है और इन्सान को वही मिलेगा जिसका वह इरादा और नीयत करेगा तो जिसकी हिजरत अल्लाह और रसूल के लिये होगी तो सचमुच उसकी हिजरत अल्लाह और रसूल के लिये होगी और जिसकी हिजरत दुनिया के किसी फ़ायदे के लिये होगी या किसी औरत से निकाह के लिये होगी तो उसकी हिजरत उसी काम के लिये होगी जिसके लिये उसने हिजरत की।"

इससे अन्दाज़ा लगाइये कि दीन की ख़िदमत का काम कैसा सख़्त और कठिन काम है। इस काम के लिये सारे फ़ायदों को छोड़कर नीयत को ख़ालिस करना कितना ज़रूरी है। जब तक सच्चे दिल से ख़ुदा को राज़ी करने की नीयत न हो, दीन का काम करना और इस राह की कठिनाइयों को सह लेना आसान नहीं है। कठिनाइयाँ इस राह में आती ही हैं। इन कठिनाइयों के आने पर सब्र अख़्तियार करने और दीन पर डटे

रहने ही में एक मुसलमान की जाँच है। यही जाँच मुसलमान के मर्तबे को ऊँचा करती है। इस जाँच के बिना अपने को मोमिन कहना और जन्नत की चाह करना बेकार है। अल्लाह तआला फ़रमाता है :

أَمْ حَسِبْتُمْ أَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَعْلَمِ اللَّهُ الَّذِينَ جَاهَدُوا مِنْكُمْ وَيَعْلَمَ الصَّابِرِينَ

(آل عمران آیت ۱۴۲)

"क्या तुमने यह समझ रखा है कि तुम जन्नत में इससे पहले दाख़िल हो जाओगे कि अल्लाह तआला तुम में से उन लोगों को जान ले जो उसकी राह में जिहादकरने वाले हैं और उसके दीन की राह में सब्र करने वाले हैं। (सूरः आलिइमरान आयत १४२)

सब्र जन्नत की कुंजा है। अल्लाह की ख़ुशी सब्र से हासिल होती है और दीन की ख़िदमत करते हुये दुनिया में अल्लाह के नाम का बोलबाला करने के लिये सबसे ज़्यादा ज़रूरी हथियार है। दीन की ख़िदमत की राह में एक मोमिन को बहुत से मौक़ों पर अपने सब्रका सबूत देना पड़ता है। बल्कि सच्ची बात यह है कि क़दम-क़दम पर ये सबूत देना पड़ते हैं। लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं। उसको नीचा दिखाने के लिये झूठी बातें गढ़ते हैं। उस पर बात मारते है, उसे सताते हैं और आख़िर में हर तरह का नुक़सान (जान लेने का भी और माल बरबाद करने का भी) पहुँचाने पर तुल जाते हैं इस मौक़े पर सच्चे दीन की ओर बुलाने वाले को जिस क़दर सब्र की

ज़रूरत पड़ती है, वह ज़ाहिर है। हर ज़माने में सच्चे दीन की ओर बुलाने वालों को इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और उन्होंने सब्र को ताक़त से उनका मुक़ाबिला किया है।

आजकल हमारे सामने हालात कुछ दूसरे हैं। हम देखते हैं कि बहुत से लोग दीन का नाम लेते हैं और अपनी हद तक दूसरों को दीन की तरफ़ बुलाते भी हैं लेकिन न तो उनके आगे कोई कठिनाई आती है और न ही वे किसी परेशानी में पड़ते हैं बल्कि बहुत से लोग तो अपने इस दीनी काम की वजह से दुनिया में बड़ाई पा लेते हैं लोग उनको बड़ा मान कर इनकी बड़ी सेवा करते हैं और इस तरह परेशानियों के बदले उन्हें आराम और कठिनाइयों के बदले सेवा कराने को मुरीदों और चेलों की टोली मिल जाती है। इन हालात को देखकर एक शख़्स यह सोच सकता है कि दीन के कामों में सब्र और जाँचे जाने की बात कहाँ से आगई।

बात दरअस्ल यह है कि बहुत दिनों से लोग दीन का मतलब ही कुछ से कुछ समझे बैठे हैं।

यह समझ लिया गया है कि ज़िन्दगी के कुछ ही हिस्सों से दीन का लगाव है। ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा जो करने का है, दीन से बाहर ही है। मिसाल के तौर पर यह समझिये कि दीन की बुनियाद तौहीद पर है, तो अगर तौहीद का मतलब बस इतना ही लिया जाये कि एक आदमी सिर्फ़ अल्लाह को अपना पूज्य माने उसको सजदा करले तो ज़ाहिर है कि यह कोई कठिन काम नहीं है लेकिन अगर तौहीद का पूरा-पूरा मतलब बताकर एक आदमी को पूरे तौर पर तौहीद की तरफ़ बुलाया जाये तो

उसके लिये ज़रूरी होगा कि वह

- अल्लाह के सिवा किसी से मुरादें न माँगे।
- अल्लाह के सिवा किसी से न डरे।
- अल्लाह के सिवा किसी और की ख़ुशी या रज़ामन्दी पर ध्यान न दे।
- अल्लाह के सिवा किसी को हाकिम न जाने।
- अल्लाह के सिवा किसी के हुक्म को न माने।
- अल्लाह के सिवा किसी के क़ानून को ठीक न माने।

और

अपनी पूरी ज़िन्दगी इसी तौहीद के रंग में रंग ले, यह बात लोगों के लिये आसान नहीं है और यह तो बस तौहीद के अक़ीदे की बात है। इसी तरह आख़िरत पर ईमान लाने के सिलसिले में कुछ बातें मोमिन से चाही जाती है। रसूल को रसूल मान लेने के बाद क्या काम किये जा सकते हैं? और क्या नहीं किये जा सकते हैं? दीन को पूरी ज़िन्दगी में क़ुबूल कर लेने के बाद किस राह पर चलना पड़ेगा और किस रास्ते को छोड़ना पड़ेगा? मतलब यह कि जब दीन अपनी शकल में लोगों के सामने आता है तो फिर आसानियाँ परेशानियों में बदलने लगती है और मुरीदों व चेलों की भीड़ भागने लगती है और उन लोगों के सिवा जो अपनी पसन्द और नापसन्द को छोड़कर अल्लाह और उसके रसूल की पसन्द को अपनाने और नापसन्द को छोड़ देने की हिम्मत करते हैं तो कोई भी साथ देने को तैयार नहीं होता बल्कि जिस जिसके फ़ायदों पर चोट पड़ती है वही दुश्मन और मुख़ालिफ़ होने लगता है। क़दम-क़दम पर

जाँच होती है। उस वक़्त अन्दाज़ा होता है कि दीन का नाम लेते ही सब्र की ज़रूरत क्यों पड़ती है ? एक छोटी सी मिसाल से समझ लीजिये। एक आदमी आज के हालात में बाज़ार में जाकर एक दूकान खोलता है। अगर वही आदमी अपनी जगह यह फ़ैसला कर चुका है कि अपनी पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह के दीन ही को अपनायेगा और अपनी ज़बान, अपने काम और अपने नमूने से हर हाल में दीन का गवाह बनेगा तो आप उसकी कठिनाइयों का अन्दाज़ा तो लगाइये क़ुरआन और नबी स० का अमल तो हमें यह सिखाता है कि झूठ न बोलो धोखा न दो। लेन-देन में इन्साफ़ से काम लो दूसरों का हक़ न मारो। रिश्वत न दो। ब्याज के पास भी न जाओ। भाव बढ़ाने के लिये चीज़ों को छुपा-छुपा कर न रखो और इसी तरह के दूसरे हुक्म—लेकिन बाज़ार क्या कहता है ? वह कहता है कि झूठ और धोखे के बिना व्यापार चल नहीं सकता। तुम धोखा न दोगे तो दूसरों ने जो तुमको धोखा दिया है, उसका घाटा कैसे पूरा होगा ? रिश्वत न दोगे तो कोई काम न बनेगा। दिखावे के और जाली रजिस्टर न बनाओगे तो सारा नफ़ा सेलसटेक्स और इन्कम टेक्स की भेंट हो जायेगा। चुङ्गी न चुराओगे तो बाज़ार में मुक़ाबिला कैसे करोगे। ब्याज से बचोगे तो व्यापार ही ठप हो जायेगा।

अब आपके लिये दो ही रास्ते हैं या तो अल्लाह के दीन को दूकान और व्यापार की भेंट चढ़ा दें और अपने मन को समझा लें कि मजबूरी में सब ठीक है। ज़ाहिर है कि ऐसा करने पर दीन पर चलने और दीन की खिदमत करने के लिये किसी सब्र की ज़रूरत नहीं है। आपने उस रास्ते को छोड़ ही दिया जहां सब्र

की ज़रूरत थी। आप कांटों भरे रास्ते पर चले ही नहीं कि आपको कपड़ा फटने का डर हो।

दूसरा रास्ता यह है कि आप किसी हाल में अपने उसूलों को न छोड़ें। बड़े कारोबार को छोड़ कर कोई छोटा व्यापार करलें लेकिन अल्लाह की नाफ़रमानी को मन्ज़ूर न करें। दुख झेलें, मेहनत करें सब्र से काम लें और अल्लाह को खुश करने के लिये दीन पर सख़्ती से डटे रहें।

यह तो एक छोटी-सी मिसाल है, नहीं तो क़दम-क़दम पर ज़िन्दगी में ऐसी बहुत सी मिसालें मौजूद हैं। आप पढ़ चुके हैं कि इस्लाम में दीन और सियासत (राजनीति) अलग-अलग दो चीज़ नहीं हैं। सियासत भी दीन ही का एक हिस्सा है जैसा कि नमाज़ व रोज़ा दीन का हिस्सा है। आप नमाज़ और रोज़े की हद तक दीन पर अमल करते हैं, इसलिये दूसरों का क्या बिगड़ता है। आप रात-दिन नमाज़ें पढ़ा करें और हर दिन रोज़े रखें, लोगों का क्या नुक़सान होता है ? लेकिन ज़रा मस्जिद के बाहर भी अल्लाह के क़ानून को अपनी ज़िन्दगी का क़ानून बना लीजिये फिर देखिये, मुश्किलें आती हैं या नहीं ? उस वक़्त आपको सब्र की ज़रूरत का अन्दाज़ा होगा कि वह कितने काम का है ? अंधेरी रात में रौशनी की क़द्र वही जानेगा जो घर से बाहर निकल कर कहीं सफ़र करेगा, लेकिन जो बन्द कमरे ही में बैठा रहेगा उसे क्या मालूम कि रात के मुसाफ़िर के लिये गैस की लालटेन कितनी प्यारी और कितनी ज़रूरी है ?

आज दुनिया में क़ुफ़्, शिर्क और अल्लाह की नाफ़रमानी की आंधी उमड़ आई है। चारों तरफ़ गुमराही फ़ैली हुई है। अब

जो इस हाल में अल्लाह के दीन के रास्ते पर चलना चाहेगा उसे तो क़दम-क़दम पर अल्लाह की हिदायत की रोशनी की ज़रूरत पड़ेगी लेकिन जो कोई पांव तोड़ कर बैठ रहेगा और दुनिया को उसके हाल पर छोड़कर किसी कोने को बसायेगा और उसी को सारा दीन समझ लेगा तो वह क्या जाने कि दीन की राह में सब्र की कितनी ज़रूरत और उसकी क्या क़ीमत है?

अल्लाह को याद करना

इन्सान अल्लाह को भूल जाता है, अपने को भूल जाता है, यह भूल जाता है कि अल्लाह से उसका क्या ताल्लुक़ है, यानी यह कि वह अल्लाह ही का बन्दा है, किसी और का नहीं और यह कि अल्लाह ही उसका स्वामी है, कोई और नहीं। तो फिर उसे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये। इन्सान में यह एक रोग है कि वह भूल जाता है। इसलिये इन्सान के सुधार के लिये सबसे ज़्यादा ज़रूरत अल्लाह की याद की है। अगर बन्दा अपने मालिक को न भूले, वह अपने को न भूले कि वह क्या है। अगर उसे याद रहे कि नेकी करने से अल्लाह ख़ुश होगा और जन्नत देगा और बुराई करने से अल्लाह नाख़ुश होता है और बुरे का ठिकाना जहन्नम है तो इन्सान कभी बुरे रास्ते पर नहीं जा सकता। यही कारण है कि इस्लाम सबसे ज़्यादा इस बात पर ज़ोर देता है कि इन्सान अल्लाह को हर वक़्त याद रखे। अल्लाह की याद ही सचमुच दीन को ज़िन्दा रखने वाली अस्ल चीज़ है। अल्लाह की याद ही इन्सान में वह

ताक़त और हिम्मत पैदा करती है, जिससे वह हर तरह की कठिनाइयाँ झेल ले जाता है। इसी याद के बल पर इन्सान कड़ी से कड़ी मुसीबतों का मुक़ाबिला हँसी ख़ुशी करता है और कर सकता है और अल्लाह की याद ही उस वक्त इन्सान को हद से आगे नहीं बढ़ने देती, जब उसे दुनिया में सुख और आराम ज़्यादा से ज़्यादा मिल रहा होता है। जबकि ऐश व आराम ही में इन्सान ज़्यादातर अल्लाह को भूल बैठता है।

अल्लाह की याद के बिना इन्सान न तो दीन पर जम सकता है और न दीन की ख़िदमत ही आसानी से कर सकता है। दीन की ख़िदमत के लिये जिस सब्र और जमाव की ज़रूरत है, वह भी अल्लाह की याद ही से मिल सकती है। जो अल्लाह को याद नहीं रखता वह दीन की राह में मज़बूती से क़दम भी नहीं जमा सकता। दीन के लिये सब्र करना और इस राह पर जमना ऐसे आदमी से हो ही नहीं सकता, जो अल्लाह को याद न रखे।

इसी लिये दीन की ख़िदमत के लिये सबसे ज़्यादा ज़रूरी चीज़ अल्लाह की याद है। दीन की पूरी इमारत अल्लाह की याद पर रुकी होती है। अल्लाह को याद न रख कर दीन का कोई काम नहीं हो सकता। जो काम अल्लाह को भुला कर किये जायें वे देखने में भले ही अच्छे लगते हों, वे दीन के काम नहीं है।

अल्लाह की याद की सबसे अच्छी शक्ल नमाज़ है। नमाज़ अल्लाह की याद की जान है। नमाज़ जितनी ही अच्छी होगी, उतना ही बन्दा अल्लाह को याद रख सकेगा। अल्लाह से क़रीब होने के लिये नमाज़ से बढ़ कर कोई और तरीक़ा नहीं। इसीलिये

नमाज़ को मोमिनीन की मेरान कहा जाता है यानी उसके ज़रिये अल्लाह तक पहुँच सकते हैं। अल्लाह की याद को मन में बिठाने के लिये नमाज़ बहुत ही अच्छी तरह पढ़ना चाहिये। यह बात नमाज़ के बयान में हम बता आये हैं।

अल्लाह को याद रखने की दूसरी शक्ल यह है कि क़ुरआन पढ़ा जाय। क़ुरआन अल्लाह का पाक कलाम है। क़ुरआन में अल्लाह के हुक्म और आदेश हैं। क़ुरआनपाक पढ़ते समय जितना ही यह ध्यान रहेगा कि हम जो कुछ पढ़ रहे हैं, वह सारे संसार के स्वामी और मालिक का आज्ञा-पत्र (फ़रमान) है, उतनी ही मन में ईमान की ज्योति पैदा होगी। क़ुरआनपाक पढ़ने से ज़्यादा से ज्यादा फ़ायदा उठाने के लिये उसका समझना ज़रूरी है। जितना ही कोई आदमी समझ कर पढ़ेगा, उतना ही वह अल्लाह की ओर बढ़ेगा। अगर कोई ज्यादा समझने की क़ाबिलीयत न रखता हो तो उसे कम से कम क़ुरआनपाक के तरजुमों (अनुवादों) से कुछ न कुछ हिस्सों का मतलब जान लेना चाहिये अगर क़ुरआन पढ़ते वक़्त थोड़ा-थोड़ा पढ़ा जाये और उसे तरजुमों की मदद से समझने की बराबर कोशिश की जाये तब भी कुछ न कुछ फ़ायदा ज़रूर होगा। क़ुरआनपाक के वे भाग, जिनमें लोगों के लिये नसीहत और हुक्म हैं, कठिन नहीं हैं। क़ुरआनपाक में वे बातें बड़े सादा तरीक़े से बयान हुई हैं, जिनको पढ़कर अल्लाह की याद बढ़े और इन्सान उसे न भूले, जिनको समझने के बाद मन का मैल दूर हो। कम पढ़ा-लिखा आदमी भी अगर ध्यान से पढ़े तो उसे बड़ा फ़ायदा होगा। सूरः क़मर में अल्लाह तआला ने बार-बार फ़रमाया है कि:—

وَلَقَدۡ يَسَّرۡنَا الۡقُرۡاٰنَ لِلذِّكۡرِ فَهَلۡ مِنۡ مُّدَّكِرٍ (سورہ قمر)

"और हमने समझने के लिये क़ुरआन को आसान कर दिया है फिर है कोई सोचने वाला (जो इस बात को सामने रख कर क़ुराआन समझने की कोशिश करे)।

क़ुरआनपाक के बारे में जहाँ यह बात ग़लत है कि मतलब समझे बिना उसे पढ़ना बेकार है, वहाँ यह बात भी ठीक नहीं हैं है कि लोग उसे समझना और उस पर ध्यान देना ही छोड़ दें। क़ाबिलीयत रख़ते हुये बस यूंही पढ़ लेने को काफ़ी समझें। सच्ची बात तो यह है कि क़ुरआन हमारे ईमान को बढ़ाने का ज़रिया उसी वक्त हो सकता है, जब उसे समझ कर पढ़ा जाये। अपनी हद तक क़ुरआन समझने की कोशिश न करना और यूंही बे समझे क़ुरआन पढ़ लेना काफ़ी समझना बड़ी महरूमी है। क़ुरआन इसी लिये है कि बन्दे उसे समझें और उससे फ़ायदा उठायें। इसी लिये क़ुरआनपाक में मोमिनीन की ख़ास ख़ूबी यह बताई गई है कि वे अल्लाह की किताब को बहुत पढ़ते हैं।

नबी स० ने क़ुरआन पढ़ने की बड़ी ताकीद की है। इसका बड़ा सवाब बताया है। नमाज़ के बाद अल्लाह को याद करने का सबसे बड़ा यही तरीक़ा बताया गया है। बहुत से आलिमों ने हिन्दी में भी क़ुरआन के तरजुमे किये हैं। अब क़ुरआन के हुक्म और उसके आदेश समझना हिन्दी पढ़ने वालों के लिये भी आसान हो गया है। हमें इस नेमत की क़द्र करना चाहिये और

जहाँ तक हो सके क़ुरआनपाक को समझ कर पढ़ना चाहिये। अल्लाह् तआला से ज़्यादा से ज़्यादा जुड़ने के लिये और उसे याद रखने के लिये क़ुरआन पढ़ना बड़ा ज़रूरी है। नमाज़ के बाद अल्लाह् को याद रखने की सबसे अच्छी शक्ल यही है। क़ुरआन पढ़ने से पूरा फ़ायदा उठाने के लिये कई बातें ज़रूरी हैं :—

(१) क़ुरआनपाक को पूरे अदब और आदर के साथ समझकर पढ़ा जाये कि यह सारे संसार के मालिक व स्वामी का कलाम है। उसने अपनी मेहरबानी से हमें सीधा रास्ता दिखाने के लिए भेजा है।

(२) पूरे ध्यान ज्ञान के साथ ठहर-ठहर कर उसे समझने की कीशिश की जाये।

(३) क़ुरआन पाक में जिन कामों के करने को कहा गयाहै, उनको सामने रखकर अपने को टटोला जाये कि हम ऐसा करते हैं या नहीं ? और उनके करने का पूरा और पक्का इरादा किया जाये। और जिन बातों से रोका गया हो, उनके बारे में अपने अन्दर टटोला जाये कि हम वे करते तो नहीं? उनसे बचने का पक्का इरादा किया जाये। क़ु रआनपाक इसीलिये उतरा है कि जो इसे पढ़े, उसे यह यक़ीन करना चाहिये कि ये सारी बातें उसी से कही जा रही है।

(४) क़ुरआन में आख़िरत की याद बहुत दिलाई गई है। इसे ध्यान से और पूरे यक़ीन के साथ मन में बिठा-बिठा कर पढ़ना चाहिये। अज़ाब के बारे में पढ़ा जाये तो उससे डरना चाहिये और अल्लाह की पनाह चाहना चाहिये। जन्नत के बारे

में पढ़ा जाये तो उसका शौक़ मन में ज्यादा से ज्यादा बिठाना चाहिये और उसके पाने की अल्लाह से दुआ करना चाहिये। यह ध्यान में बिठाते रहना चाहिये कि वे कौन-कौन से काम हैं जो जन्नत या दोज़ख़ में ले जाने वाले हैं। फिर अपने को देखना चाहिये कि हम किस तरह के काम कर रहे हैं।

(५) क़ुरआनपाक में तबाह की गई पिछली क़ौमों के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। उनसे नसीहत हासिल करनी चाहिये। उन सारे कामों से बचने का पक्का इरादा करना चाहिये, जिनके कारण पिछली क़ौमें तबाह की गईं।

(६) क़ुरआनपाक में अल्लाह के नबियों का बयान है। उनके साथियों के बारे में है। उन्होंने क्या किया ? उनमें क्या गुण थे ? ये सारे हालात ध्यान से पढ़ने चाहिये। उनको याद रखना चाहिये और उनपर चलना चाहिये।

(७) क़ुरआन में यह बात बार-बार बताई गई है कि आख़िरत के फ़ायदे के लिये दुनिया का फ़ायदा क़ुरबान कर देना चाहिये। इसे अच्छी तरह याद रखना चाहिये और इसी को सामने रखकर अपने को परखना चाहिये।

यह बात बिल्कुल ठीक है कि नमाज़ और क़ुरआन पढ़ने से अच्छी दूसरी ऐसी चीज़ नहीं जो अल्लाह की याद दिलाये लेकिन यह नहीं हो सकता कि हर वक्त कोई नमाज़ और क़ुर-आन पढ़ता रहे। बाक़ी वक्त में भी तो अल्लाह को याद रखना मोमिन के लिये ज़रूरी है। अल्लाह तआला फ़रमाता है कि :-

فَإِذَا قَضَيْتُمُ الصَّلٰوةَ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ قِيَامًا وَّ قُعُوْدًا وَّعَلٰى جُنُوْبِكُمْ

(النساء آیت ۱۰۳)

"फिर जब तुम नमाज़ पढ़ चुको तो अल्लाह को याद करो, खड़े बैठे और लेटे (अन्निसाअ १०३)

इससे यह मालूम हुआ कि हर हाल में अल्लाह को याद रखना चाहिये। यह तो उसी वक्त हो सकता है कि जब ज़ुबान से अल्लाह का नाम हर वक्त लिया जाता रहे। इसके लिये नबी स० ने बहुत से अच्छे-अच्छे बोल सिखाये हैं और अलग-अलग समय में पढ़ने के लिये बहुत से बोल बताये हैं। ये बोल हदीसों में मिलते हैं। ये इतने ज़्यादा और भरपूर हैं कि अगर कोई शख्स इनको ज़ुबान से कहता रहे तो उसे इ[illegible] बात की ज़रूरत ही बाक़ी न रहेगी कि वह अपनी तरफ़ से अल्लाह को याद करने के लिये कहीं से कुछ बोल ढूंढ़े या दूसरों के ढूंढ़े हुए या बनाये हुये बोलों को पढ़े।

अल्लाह की याद के लिये कुछ ऐसे बोल नीचे लिखे जाते हैं। इनके अलावा और भी बोल नबी स० ने सिखाये हैं। मन में हर समय अल्लाह की याद ताज़ा रखने के लिये इन बोलों को पढ़ते रहना बड़ा ही मुफ़ीद है लेकिन कब? जब इन्हें सोच समझ कर पढ़ा जाये। पढ़ते समय वह मतलब दिल में बिठाया जाये। बे-सोचे समझे पढ़ने से दिल पर वह असर नहीं होता जो दिल में हर वक्त अल्लाह की मुहब्बत और उसकी याद बनाये रखे।

(१) नबी स० ने फ़रमाया है कि 'लाइलाहा इल्लल्लाहु' वह बोल है जो ऐसे सारे बोलों से बढ़कर है जो अल्लाह की याद दिलाने वाले हैं। आप 'लाइलाहा इल्लल्लाहु' का मतलब पढ़ चुके हैं जो इस बात को बार-बार याद करेगा कि उसका मालिक, पूज्य और हाकिम अल्लाह के सिवा कोई और नहीं है। तो ज़ाहिर है कि उसके दिल में अल्लाह की मुहब्बत कितनी होगी। वह अल्लाह के सिवा हर एक से मुँह मोड़ लेगा। न तो वह किसी से डरेगा और न वह किसी के आगे हाथ फैलायेगा। उसकी नज़र में अल्लाह ही अल्लाह होगा। हदीसों में इस बोल की बड़ी ही बड़ाई बताई गई है। नबी स० ने फ़रमाया है कि अपने ईमान को 'लाइलाहा इल्लल्लाहु' की याद से ताज़ा और नया करते रहना चाहिये।

(२) नीचे लिखित बोल अल्लाह के रसूल स० को बहुत पसन्द थे।

"सुबहानल्लाह, वलहम्दुलिल्लाह व लाइलाहा इल्लल्लाहु वल्लाहु अकबर (यानी अल्लाह तआला हर ऐब और शिर्क से पाक है। हर तरह की तारीफ़ और शुक्र अल्लाह के लिए ही है और उसके सिवा कोई इलाहा (स्वामी और पूज्य) नहीं और अल्लाह सबसे बड़ा है।

سُبْحَانَ اللّٰهِ وَالْحَمْدُ
لِلّٰهِ وَلَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ
وَاللّٰهُ اَكْبَرُ

(३) ये दो बोल पढ़ते रहने से बड़ा सवाब मिलता है।

سُبْحَانَ اللهِ وَبِحَمْدِهٖ
سُبْحَانَ اللهِ الْعَظِيْمِ

"सुबहानल्लाहिवबिहम्दि ही, सुबहानल्लाहिल अज़ीब (यानी अल्लाह हर ऐब और शिर्क से पाक है। शुक्र व तारीफ़ उसी के लिये है। अल्लाह जो बड़ाई वाला है। (बुख़ारी व मुस्लिम)।

(४) इस बोल को दिन में सौ बार पढ़ लेने से दस गुलामों को आज़ाद कराने के बराबर सवाब मिलता है। सौ नेकियाँ लिखी जाती हैं और उसकी सौ बुराइयाँ मिटा दी जाती हैं और शैतान से उस दिन बच जाता है।

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللهُ وَحْدَهٗ
لَا شَرِيْكَ لَهٗ لَهُ
الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ
وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ
قَدِيْرٌ

"लाइलाहा इल्लल्लाहु वह्-दहू ला शरीका लहू लहुलमुल्कु व लहुलहम्दु वहुवा अला कुल्लि शययिन क़दीर (अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं वही एक इलाह है, उसका कोई शरीक नहीं। हुक्म चलाना उसी के लिए है। शुक्र और तारीफ़ का हक़दार वही है और वह हर चीज़ पर कुदरत रखता है। (बुख़ारी व मुस्लिम)।"

(५) नीचे लिखे बोलों को पढ़ते रहना जन्नत के ख़ज़ानों में से एक ख़ज़ाना है :-

"ला हौलावला क़ूव्वत इल्ला बिल्लाह" (अल्लाह की मदद के बिना कोई ताक़त और शक्ति नहीं है। (बुख़री व मुस्लिम)।

لَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ إِلَّا بِاللهِ ط

दुआ

"दुनिया में जो कुछ होता है, वह अल्लाह के हुक्म और उसी के इशारे से होता है और मोमिन का सच्चा सहायक बस अल्लाह ही है" यह बात मान लेने के बाद मोमिन से यह हो ही नहीं सकता कि वह अपने छोटे से छोटे और बड़े से बड़े हर काम में अल्लाह से मदद न माँगे, अपनी हर ज़रूरत के वक़्त उसे न पुकारे और अपनी हर चाह उसी के सामने न रखे। इसी माँगने, पुकारने और अपनी चाहों व मुरादों को उसके सामने रखने को दुआ कहते हैं।

इस्लाम दुआ को बहुत बड़ी बात कहता है। अल्लाह तआला का हुक्म है कि बन्दे को जो कुछ माँगना हो, मुझसे माँगे। बात बिलकुल साफ़ है। अगर कोई शख़्स अल्लाह के सिवा किसी और से माँगता है तो ज़ाहिर है कि उसके दिल में यह बात पहले से मौजूद है कि इस तरह अल्लाह के सिवा कोई और भी उसकी जरूरत को पूरा कर सकता है जबकि इस्लाम यह सिखाता है कि ज़रूरतों को पूरा करने वाला अल्लाह के सिवा और कोई नहीं है फिर यह कि आदमी जिससे दुआ माँगता है, दिल में उसकी मुहब्बत और बड़ाई भी ज़रूर बैठती है। जबकि इस्लाम चाहता है कि दिल से अल्लाह के

सिवा हर एक की मुहब्बत और हर एक की बड़ाई बिल्कुल निकल जाये। इसीलिए अल्लाह के सिवा किसी और से दुआ माँगना बिल्कुल ग़लत है। इस्लाम इसे शिर्क बताता है। नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने फ़रमाया कि अपनी ज़रूरतें अल्लाह से माँगना भी दरअस्ल एक इबादत है। हदीस शरीफ़ में तो दुआ को इबादत का जौहर और सत कहा गया है। एक बार हुज़ूर स० ने फ़रमाया "अल्लाह तआला उस बन्दे से नाखुश होता है जो अपनी मुरादें उससे नहीं माँगता।"

दीन की ख़िदमत के लिये दुआ भी बड़ी ताक़त और शक्ति देती है बल्कि मोमिन को ताक़त देने वाली, उसे संभालने वाली, और उसका सहारा दुआ ही है। बन्दा अल्लाह की राह पर चलते हुए, उसको खुश करने के लिये उसके दीन का बोल बाला करने के लिए सिर धड़ की बाज़ी लगा रहा है और फिर हाथ फैला फैला कर उसी से मदद माँग रहा है। यही वह दुआ है जो बन्दे को अल्लाह से क़रीब करती है। यही वह दुआ है जिसके बाद दुनिया में उसे कामयाबी होती है और उसके लिये जन्नत के दरवाजे खुलते हैं। दुआ अल्लाह के यहाँ ऊँचे से ऊँचे मर्तबे दिलाती है।

बन्दा अपनी छोटी से छोटी ज़रूरतों के लिये भी अल्लाह से दुआ माँग सकता है बल्कि उसे माँगना चाहिये। ये दुआयें अल्लाह को बहुत ही पसन्द हैं। दुआ से ईमान में तरक़्क़ी होती है। हर हाल में दिल को ढारस बंधता है। दुआ मोमिन का सबसे बड़ा सहारा है। अगर किसी वक्त कोई दुआ क़बूल न हो तो मोमिन को यह यक़ीन रखना चाहिये कि अल्लाह तआला

हमारी चाहों का पाबन्द नहीं है कि जो हम चाहें और जब चाहें, अल्लाह हमें दे ही दे। हमको क्या मालूम कि हमारी चाहें कब हमारे लिये हानि पहुँचाने वाली हैं। अल्लाह जानता है। जब वह चाहता है, उसी वक्त दुआ क़ुबूल करता है। यह बात याद रखना चाहिये कि चाहे दुआ क़ुबूल हो या न हो, बन्दे को दुआ करने का सवाब ज़रूर मिलता है क्योंकि दुआ ख़ुद एक इबादत है। नबी स० ने फ़रमाया :—

"दुआ कभी बेकार नहीं जाती लेकिनउस के क़बूल होने की शकलें अलग-अलग हैं। कभी ऐसा होता है कि बन्दा जिस चीज़ की दुआ करता है, उसको वही मिल जाती है और कभी ऐसा होता है कि अल्लाह तआला उस बन्दे को वह चीज़ देना मुनासिब नहीं समझता। इसलिये वह मिलती तो नहीं लेकिन उसके वदले कोई और नेमत उसको दे दी जाती है या कोई आने वाली बला और मुसीबत टाल दी जाती है या दुआ उसके गुनाहों को माफ़ करा देती है और कभी ऐसा होता है कि अल्लाह तआला इस दुआ को आख़िरत के लिये रख लेता है और वहाँ इसके बदले वह कुछ देता है जिसे ख़ुद दुआ माँगने वाला सोच भी नहीं सकता।

दुआ माँगते समय यह बात ध्यान में रहे कि दुआ निहायत गिड़गिड़ा कर और बड़े अदब व आदर के साथ माँगी जाये और कभी ऐसी चाह न की जाये जिसे शरीअत में अच्छा न समझा जाता हो। नबी स० उठते बैठते, कहीं आते जाते, सोते दुआ मांगा करते थे हमें चाहिये कि हम ऐसा ही करें। नबी स० खास ख़ास समय जो दुआएं करते थे, वे ये हैं:—

सोते वक्त

(१) ऐ मेरे रब ! मैं ने तेरे ही नाम के साथ अपना पहलू बिस्तरे पर रखा और तेरे ही नाम के साथ उसे उठाऊँगा। अगर तू मेरी रूह (जान) को रोकले (मैं मर जाऊं) तो मेरी रूह पर रहम फ़रमाना और अगर छोड़दे (मैं जिन्दार रहूं) तो उसकी हिफ़ाज़त फ़रमाना जिस तरह तू अपने नेक बन्दों की हिफ़ाज़त फ़रमाता है।

بِاسْمِكَ رَبِّيْ وَضَعْتُ
جَنْبِيْ وَبِكَ اَرْفَعُهٗ اِنْ
اَمْسَكْتَ نَفْسِيْ فَارْحَمْهَا
وَاِنْ اَرْسَلْتَهَا فَاحْفَظْهَا
بِمَا تَحْفَظُ بِهٖ عِبَادَكَ
الصَّالِحِيْنَ ط (بخاری ومسلم)

(२) ऐ अल्लाह ! मैं तेरे नाम के साथ ही मरता और जीता हूं।

بِاسْمِكَ اَللّٰهُمَّ اَمُوْتُ
وَاَحْيٰى (بخاری ومسلم)

(३) ऐ अल्लाह ! मैं ने अपने को तेरे हवाले कर दिया मैं ने अपना मुंह तेरी तरफ़ कर लिया। अपने मामलात तेरे हवाले कर दिये। अपनी पीठ तेरे आसरे पर लगाई और ये सब कुछ बस इसीलिये कि मैं अच्छा बदला चाहता हूं और तेरे अज़ाब से डरता

اَللّٰهُمَّ اَسْلَمْتُ نَفْسِيْ
اِلَيْكَ وَوَجَّهْتُ وَجْهِيْ
اِلَيْكَ وَفَوَّضْتُ اَمْرِيْ
اِلَيْكَ وَاَلْجَأْتُ ظَهْرِيْ
اِلَيْكَ رَغْبَةً وَّرَهْبَةً

اِلَيْكَ لَا مَلْجَأَ وَلَا مَنْجَأَ
مِنْكَ اِلَّا اِلَيْكَ اٰمَنْتُ
بِكِتَابِكَ الَّذِیْ اَنْزَلْتَ
وَنَبِيِّكَ الَّذِیْ اَرْسَلْتَ

(بخاری ومسلم)

हूं। तेरे सिवा न कोई पनाह की जगह है और न ही तेरे सिवा तेरे अज़ाब से कोई बच निकलने की जगह है। मैं तेरी किताब पर ईमान लाया जिसको तूने उतारा और तेरे नबी पर जिस को तूने भेजा।

इन दुआओं के आलावा नबी स० क़ुरआन पाक की कुछ सूरः पढ़ा करते थे। ख़ास कर आयतुल कुरसी, सूरः बकरः की आख़िर आयत "आमनरसूल" से आखिर तक या सूरः इख़लास, सूरः फ़लक़, सूरः नास। (बुख़ारी व मुस्लिम)।

सोकर उठते समय आप कहते:—

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْ
اَحْيَانَا بَعْدَ مَا اَمَاتَنَا
وَاِلَيْهِ النُّشُوْرُ

(بخاری ومسلم)

"शुक्र और तारीफ़ अल्लाह के लिये है, जिसने मुझें मौत देने के बाद ज़िन्दा किया और उसी तरह दूसरी बार उठकर जाना है।

सुबह व शाम के लिये नबी स० ने बहुत सी दुआयें सिखाईं। इनमें तीन ये हैं:—

اَللّٰهُمَّ عَالِمَ الْغَيْبِ
وَالشَّهَادَةِ فَاطِرَ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ رَبَّ كُلِّ شَيْءٍ
وَّمَلِيْكَهٗ اَشْهَدُ اَنْ لَّا
اِلٰهَ اِلَّا اَنْتَ اَعُوْذُبِكَ
مِنْ شَرِّ نَفْسِيْ وَمِنْ
شَرِّ الشَّيْطَانِ وَشِرْكِهٖ
(ترمذی، ابوداؤد، دارمی)

(१) ऐ अल्लाह ! छुपी और खुली हर चीज़ के जानने वाले आसमान व ज़मीन के पैदा करने वाले, हर चीज़ के पालने वाले, मालिक ! मैं गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं। मैं अपने नफ़्स की शरारत से, शैतान की शरारत से और उसको शरीक ठहराने से तेरी पनाह चाहता हूँ।

رَضِيْتُ بِاللّٰهِ رَبًّا
وَّبِالْاِسْلَامِ دِيْنًا وَّبِمُحَمَّدٍ
نَّبِيًّا (احمد و ترمذی)

(२) मैं अल्लाह को रब (स्वामी) बनाकर, इस्लाम को अपना दीन बनाकर और मुहम्मद को अपना नबी मान कर बिल्कुल राज़ी व खुश हूँ।

اَللّٰهُمَّ مَا اَصْبَحَ بِيْ -
(صبح اور شام کو مَا اَصْبَحَ کے بجائے
مَا اَمْسٰى) مِنْ نِّعْمَةٍ اَوْ

(३) ऐ अल्लाह ! जो नेमत भी मुझ पर या किसी पर उतरी तो बस तेरी ही तरफ़ से।

بِأَحَدٍ مِّنْ خَلْقِكَ فَمِنْكَ وَحْدَكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ فَلَكَ الْحَمْدُ وَلَكَ الشُّكْرُ (ابوداؤد)

कोई तेरा शरीक नहीं। तेरे लिये ही शुक्र और हर तरह की तारीफ़

सफ़र को जाते समय और सवारी पर सवार होते वक्त आप यह पढ़ा करते थे :—

سُبْحَانَ الَّذِىْ سَخَّرَ لَنَا هٰذَا وَمَا كُنَّا لَهُ مُقْرِنِيْنَ اَللّٰهُمَّ اِنَّا نَسْئَلُكَ فِىْ سَفَرِنَا هٰذَا الْبِرَّ وَالتَّقْوٰى وَمِنَ الْعَمَلِ مَا تَرْضٰى اَللّٰهُمَّ هَوِّنْ عَلَيْنَا سَفَرَنَا هٰذَا وَاطْوِ لَنَا بُعْدَهُ اَللّٰهُمَّ اَنْتَ الصَّاحِبُ فِى السَّفَرِ وَالْخَلِيْفَةُ فِى الْاَهْلِ

पाक है वह अल्लाह, जिसने इस सवारी को हमारे लिये सधाया, जबकि हम उसको ताबेदार नहीं बना सकते थे। ऐ अल्लाह ! हम तुझ से यही चाहते हैं कि इस सफ़र हम लोगों के हक़ अदा करें और तेरी नाफ़रमानी से बचकर नेकी अपनायें और वे काम करें जो तुझे पसन्द हों ! ऐ अल्लाह ! मेरे लिये इस सफ़र को आसान करदे और हमारे लिये इसकी दूरी को लपेट दे। ऐ अल्लाह ! तू ही सफ़र में साथी है और हमारे घर वालों की देख भाल करने वाला

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَعُوْذُبِكَ مِنْ وَعْثَاءِ السَّفَرِ وَكَآبَةِ الْمَنْظَرِ وَسُوْءِ الْمُنْقَلَبِ فِی الْمَالِ وَالْاَهْلِ (مسلم)

तू ही है। ऐ अल्लाह ! मैं सफ़र की कठिनाइयों, परेशानियों और अपने माल और घर वालों में बुरी वापिसी से तेरी पनाह चाहता हूँ।"

जब आप सफ़र से वापिस होते तो यही दुआ करते और उसमें इतना और बढ़ा लेते कि :-

اٰئِبُوْنَ تَائِبُوْنَ عَابِدُوْنَ لِرَبِّنَا حَامِدُوْنَ (مسلم)

"हम पलटने वाले हैं, हम तौबा करने वाले हैं, हम बन्दगी करने वाले हैं, हम अपने रब की तारीफ करने वाले हैं।"

किसी को विदा करते समय यह फरमाते :—

اَسْتَوْدِعُ اللّٰهَ دِیْنَكَ وَاَمَانَتَكَ وَاٰخِرَ عَمَلِكَ

"मैं तुम्हारे दीन, तुम्हारी ईमानदारी और तुम्हारे कर्मों को अल्लाह की अमानत में देता हूँ।"

(ترمذی، ابوداؤد، ابن ماجہ)

घर से बाहर निकलते तो दुआ फरमाते :—

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَعُوْذُبِكَ اَنْ اَضِلَّ اَوْ اُضَلَّ اَوْ اَظْلِمَ اَوْ اُظْلَمَ اَوْ اَجْهَلَ اَوْ یُجْهَلَ عَلَیَّ (ابوداؤد، ابن ماجہ)

"ऐ अल्लाह ! मैं तेरी पनाह चाहता हूं इस बात से कि भटकूं या भटकाया जाऊं या जुल्म करूँ या मुझ पर जुल्म किया जाये या झगड़ूं या मुझ से झगड़ा किया जाये।"

नबी स० ने फरमाया कि घर में दाखिल हो तो यह दुआ पढ़ो फिर घर वालों को सलाम करो :—

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَسْئَلُكَ خَیْرَ الْمَوْلَجِ وَخَیْرَ الْمَخْرَجِ بِسْمِ اللّٰهِ وَلَجْنَا وَعَلَى اللّٰهِ رَبِّنَا تَوَكَّلْنَا۔ (ابوداؤد)

"ऐ अल्लाह ! मैं तुझ से घर के अन्दर अच्छा दाखिल होना और बाहर होना चाहता हूँ। हम अल्लाह के नाम के साथ दाख़िल हुए और हमने अल्लाह पर भरोसा किया जो हमारा रब है।"

किसी मुसीबत के वक्त नबी स० फरमाते :—

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ الْعَظِیْمُ الْحَلِیْمُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ رَبُّ الْعَرْشِ الْعَظِیْمِ، لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ رَبُّ السَّمٰوٰتِ وَرَبُّ الْاَرْضِ وَرَبُّ الْعَرْشِ الْكَرِیْمِ۔

(بخاری ومسلم)

"अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं, जो अज़मत वाला और समाई वाला है ! उसके सिवा कोई इलाज नहीं जो बड़ाई वाले अर्श का मालिक है, अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं जो आसमानों का भी रब है, ज़मीन का भी रब है और अर्श का भी रब (मालिक) है और बहुत ही बुज़र्गी व मेहरबानी करने वाला है।"

चाँद देखते वक्त फ़रमाते :—

"ऐ अल्लाह ! इस चाँद को हम पर अम्न व ईमान व सलामती और इस्लाम के साथ निकाल। मेरा रब और तेरा रब अल्लाह है।"

اَللّٰهُمَّ اَهِلَّهُ عَلَيْنَا بِالْاَمْنِ وَالْاِيْمَانِ وَالسَّلَامَةِ وَالْاِسْلَامِ رَبِّيْ وَرَبُّكَ اللّٰهُ (ترمذی)

नबी स० खाना खाने से पहले पढ़ते और खाना खा कर फ़रमाते :—

"बिस्मिल्ला हिर्रहमानिरहीम"
"शुक्र है अल्लाह के लिये जिसने हमें खिलाया पिलाया, और मुसलमान बनाया।"

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْ اَطْعَمَنَا وَسَقَانَا وَجَعَلَنَا مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ ۝

(ترمذی، ابوداؤد، ابن ماجہ)

नमाज़ के बाद नबी स० बहुत सी दुआएं फरमाते :

(१) नमाज़ ख़त्म करते ही आप पढ़ते अस्तग़फ़िरुल्लाह (मैं माफ़ी चाहता हूँ) फिर फरमाते :

"अल्लाहुम्म अन्तस्सलामु व मिन्कस्सलामु तबारक्त या जल जलालि वल इकराम (बुख़ारी व मुस्लिम)

اَللّٰهُمَّ اَنْتَ السَّلَامُ وَمِنْكَ السَّلَامُ تَبَارَكْتَ يَاذَا الْجَلَالِ وَالْاِكْرَامِ

(بخاری ومسلم)

(ऐ अल्लाह ! तू सलामती वाला है। सलामती तुझी से है। बुज़ुर्गी व करम वाले ! तू बड़ी बरकत वाला है।

(२) हज़रत फ़ातिमा को अपने सोते वक्त और नमाज़ के बाद "सुबहानल्लाह" ३३ बार 'अल्हम्दुलल्ला' ३३ बार और 'अल्लाहुअकबर' ३४ बार पढ़ने को फ़रमाया

(बुख़ारी व मुस्लिम)

आप ने इस का बहुत बड़ा सवाब बताया और दूसरे लोगों को पढ़ने की ताकीद की।

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ
لَا شَرِيْكَ لَهٗ لَهُ الْمُلْكُ
وَلَهُ الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى
كُلِّ شَیْءٍ قَدِيْرٌ
(مسلم)

(३) ला इलाहा इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरीक लहू लहुल मल्कु व लहुल हम्दु वहुवा अला कुल्लि शैयिन क़दीर
(इसका तरजुमा पहले आ चुका है)

यह दुआ भी करते:—

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَعُوْذُ بِكَ مِنَ
الْجُبْنِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنَ
الْبُخْلِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنَ

ऐ अल्लाह ! बेशक मैं तेरी पनाह चाहता हूँ कायरता से, तेरी पनाह चाहता हूँ लाचारी

اَرْذَلِ الْعُمُرِ وَاَعُوْذُبِكَ
مِنْ فِتْنَةِ الدُّنْيَا وَ
عَذَابِ الْقَبْرِ (بخاری)

वाली उम्र से, तेरी पनाह चाहता हूँ दुनिया की आज़मायशों और क़ब्र के अज़ाब से।

ऐ मेरे रब मुझे माफ़ कर दे और मेरी दुआ क़ुबूल करले। बे शक तू तौबा क़ुबूल करने वाला है और माफ़ करने वाला है सोते वक़्त फ़रमाते:—

اَسْتَغْفِرُ اللّٰهَ الَّذِىْ
لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْحَىُّ الْقَيُّوْمُ
وَاَتُوْبُ اِلَيْهِ ط
(ترمذی، ابوداؤد)

मैं आल्लाह से गुनाहों की माफ़ी चाहता हूँ और अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं जो सच्ची ज़िन्दगी रखने वाला है और संसार का पूरा बन्दुबस्त सम्भाले हुये है। और मैं उसी की तरफ़ पलटता हूँ।

اَللّٰهُمَّ اَنْتَ رَبِّىْ لَآ اِلٰهَ
اِلَّا اَنْتَ خَلَقْتَنِىْ وَاَنَا
عَبْدُكَ وَاَنَا عَلٰى عَهْدِكَ
وَوَعْدِكَ مَا اسْتَطَعْتُ
اَعُوْذُبِكَ مِنْ شَرِّ مَا

ऐ अल्लाह तू मेरा रब है। तेरे सिवा कोई इलाह नहीं। तूने मुझे पैदा किया और मैं तेरा बन्दा हूँ और मैं तुझ से किये हुये इक़रार और वायदे पर जहाँ तक मुझ से हो सकता है क़ायम रहूँगा। जो कुछ मैंने किया है उसकी बुराई

صَنَعْتُ اَبُوْءُ لَكَ
بِنِعْمَتِكَ عَلَيَّ وَاَبُوْءُ
بِذَنْبِيْ فَاغْفِرْلِيْ فَاِنَّهٗ
لَا يَغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا اَنْتَ

(بخاری)

से मैं तेरी पनाह चाहता हूँ। मुझ पर तूने जो नेमतें की हैं, उनका मैं इक़रार करता हूँ तू मेरे गुनाहों को माफ़ करदे। तेरे सिवा कोई और गुनाहों को माफ़ करने वाला नहीं है।

॥ समाप्त ॥

हमारा हिन्दी विभाग

मक्तबा अल-हसनात रामपुर ने हिन्दी भाषा में भी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। ये तमाम पुस्तकें बहुत आसान ज़ुबान में लिखी गयी हैं और लिखने का ढंग इतना अच्छा है कि पढ़ने वाले को आनन्द आता है।

इस्लाम की शिक्षा

इस्लाम की जरूरी बातें बताने के लिये यह छोटी सी किताब बड़े काम की है। इसमें इस्लाम के अक़ीदों को अच्छी तरह समझाया गया है। नमाज़ पढ़ने का ढंग बताया गया है। वुज़ू, गुस्ल और तहारत के मसलें बताये गये हैं। जनाज़े की नमाज़ और ईद की नमाज़ पढ़ने का तरीका भी बताया गया है। स्कूलों में पढ़ने वाले मुसलमान लड़के और लड़कियाँ जो उर्दू नहीं पढ़ सकते, उनके लिये यह किताब बहुत मुफ़ीद और ज़रूरी है।

नमाज़

नमाज़ पढ़ने का पूरा तरीक़ा इस किताब में लिखा गया है। नमाज़ की सारी दुआयें और तरजुमा आसान हिन्दी में दिया गया है। इससे पूरी नमाज़ बहुत आसानी से याद की जा सकती है। थोड़े ही समय में सात बार छप चुकी है।

क़ुरआनी किस्से

क़ुरआन में बयान किये हुए सच्चे क़िस्सों में से कुछ क़िस्से इस किताब में दिये गये हैं जो अपने अन्दर बड़ा सबक़ रखते हैं।

नबियों के हालात

इन हालात को हमने तीन भागों में छापा है पहले भाग में हज़रत आदम अलैहिस्सलाम हज़रत नूह अलैहिस्सलाम हज़रत हूद अलैहिस्सलाम, हजरत सालेह अलैहिस्सलाम, हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम और हजरत लूत अलैहिस्सलाम के हालात शामिल किये गये हैं।

दूसरे भाग में हज़रत यूसुफ़ अलैहिस्लाम और हज़रत सुलेमान अलैहिस्सलाम के हालात दिये गये हैं।

तीसरे भाग में हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम का हाल है।

इस्लाम

इस्लाम क्या है, उसके तकाज़े क्या है पूरी तफ़सील से पढ़िये।

अल्लाह के नबी

इस किताब में बताया गया है कि रसूल किसे कहते हैं। वे क्यों भेजे जाते हैं। यह किताब आसान ज़ुबान में लिखी गयी है।

ईमान

मुसलमान होने के लिये सबसे पहली चीज ईमान है। ईमान किसे कहते हैं। उसके क्या तक़ाज़े हैं ? यह जानने के लिये इस किताब को पढ़िये।

आख़िरत

एक दिन आख़िरत ज़रूर आनी है। यह मुसलमानों का ईमान है। इस किताब में आख़िरत के बारे में ईमान ताज़ा करने वाली बहुत-सी बातें दी गयी हैं।

आओ दीन सीखें

इस किताब से बहुत आसान ज़बान में दीन की बातें ज़हनों में बिठाने की कोशिश की गई है। गाँव के माहौल में की गई बात चीत जो बहुत दिलचस्प भी है। क़ीमत

- क़ुरआन मजीद हिन्दी अनुवाद
- हज़रत मोहम्मद सं० की पवित्र जीवनी तथा संदेश — मो० अब्दुल हई
- दीन की बातें — मो० अब्दुल हई
- हदीस माला — मो० जलील अहसान नदवी
- इस्लामी इतिहास — " " "
- कभी आपने सोचा — " " "
- इबादत — " " "
- दुआयें (पाकेट साइज़) — " " "
- जुमा के ख़ुत्बे — " " "
- जन्म से मौत तक — " " "

मकतबा अलहसनात देहली

3004/2 Sir Syed Ahmad Road, Darya Ganj, New Delhi-110002
Tel. : 91-11-2327 1845, Telefax : 91-11-4156 3256
E-mail: alhasanatbooks@rediffmail.com